# शांति सन्देश

अर्थात्

**हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब द्वारा लिखित**

***"पैग़ामे सुलाह"***

का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

डॉ. खुर्शीद आलम तारीन

प्रकाशक

अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम (लाहौर) हिन्द,

**मस्जिदे अहमदिय्या, क़लमदान पुरा,**

**श्रीनगर, कश्मीर १९०००२**

**www.aaiil.org**

# शांति सन्देश

अर्थात्

**हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब द्वारा लिखित**

*"पैग़ामे सुलाह"*

का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

डॉ. ख़ुर्शीद आलम तारीन

प्रकाशक

अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम (लाहौर) हिन्द,

**मस्जिदे अहमदिय्या, क़लमदान पुरा,**

**श्रीनगर, कश्मीर १९०००२**

**www.aaiil.org**

پیغام صلح (آخری لیکچر)
حضرت مرزا غلام احمدصاحب علیہ الرحمة

# Message of Peace
# by
Hazrat Mirza Ghulam Ahmad

# शांति संदेश

*मूल उर्दू लेखन*

## हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब

*हिन्दी अनुवाद*

## डा. ख़ुर्शीद आलम तारीन

**2001 AD**

www.aaiil.org

© कॉपीराइट सर्वाधिकार
**अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम (लाहौर) हिन्द,**
क़लमदान पुरा, श्रीनगर, कश्मीर – १९०००२

मूल उर्दू आलेख : १९०८ ई.
वर्तमान संशोधित अंग्रेज़ी संस्करण १९९३ व १९९६

**अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम** –– इस अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी प्रचार केन्द्र की स्थापना १९१४ ई. में लाहौर में हुई। इस महा प्रचार केन्द्र के नींवदाता हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब (अल्लाह की शांति उन पर वर्षित हो !) के वरिष्ठ अनुयायी थे। इस प्रचार केन्द्र की स्थापना का एकमात्र उद्देश्य इस्लाम की वह उदार, सहिष्णु और शांतिमय छवि पनः दुनिया के सामने रखना है, जिस का सहज चित्रण कुर्आन शरीफ़ और हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद सल्ल[1] के परमपावन चरित्र में विद्यमान है। इस संस्था ने अब तक संसार की अनेक प्रमुख भाषाओं में इस्लाम पर अति विपुल साहित्य प्रकाशित किया है, जो सर्वत्र अपार श्लाघा और ख्याति प्राप्त कर चुका है।

प्रथम हिन्दी संस्करण : **2001 AD**

**हिन्दी अनुवादक की ओर से .....**

हिन्दी अनुवाद करते समय हम ने मुल उर्दू संस्करण के साथ साथ अंग्रेज़ी संस्करणों को भी सामने रखा है।

१."***सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम***" (अथात् ' उन पर अल्लाह की अपार कृपा और शांति वर्षित हो') का संक्षिप्त रूप। जहां भी हज़रत पैग़म्बर–श्री मुहम्मद का पावत्र नाम आये पूरा वाक्य पढ़ना चाहिये। (अनुवादक)

# हमारे कुछ अन्य ख्यातिप्राप्त प्रकाशन

## कुर्आन शरीफ़ की अंग्रेज़ी टीका

♦ "मौलाना मुहम्मद अली साहिब ने कुर्आन शरीफ़ का अंग्रजी में अनुवाद करके इस्लाम की जो महत्त्वपूर्ण सेवा की है उस की महत्ता को स्वीकार न करना मानो सूरज की रोशनी से इन्कार करना है। इस अनुवाद द्वारा न सिर्फ़ हज़ारों ग़ैरमुस्लिमों ने इस्लाम के शीतल आँचल में शरण ली बल्कि हज़ारों मुसलमान भी इस्लाम के और अधिक निकट आगए। जहाँ तक मेरा अपना संबंध है मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि यह अनुवाद गिनती की उन चन्द किताबों में से है जो चौदाह पंद्राह साल पहले ,जब मैं नास्तिकता और अधर्म रूपी अँधाकरों की गहराइयों में भटक रहा था ,मेरे लिए मार्गदीप बन कर आई और मुझे इस्लाम का मार्ग दिखाया।"

(मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रअ] ,कुर्आन शरीफ़ के मशहूर टीकाकार)

♦ "यह कुर्आन शरीफ़ का अंग्रेज़ी भाषा में प्रमाणिकतम अनुवाद है ,इस में ज्ञानप्रज्ञान से भरे हुए फुटनोट दर्ज हैं।"

(मौलाना मुहम्मद अली "जौहर" आफ़ ख़िलाफत मूवमेंट)

## कुर्आन शरीफ़ की विश्वकोशीय उर्दू तफ़सीर (टीका)

♦ "(मौलाना मुहम्मद अली साहिब[रअ] का) यह अनुवाद साम्प्रदायिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति से लगभग रिक्त है ,मौलाना साहिब ने बड़ी सावधानी से अनुवादक की भूमिका निभाई है ......... उन्हों ने यह अनुवाद बड़ी श्रद्धा और आम जनमत को दृष्टि में रखते हुए किया है।"

(डा. सालिहा अब्दुल्हकीम शरफ उद्दीन की कृति *'कुर्आन हकीम के उर्दू तराजिम'*)

♦ "यह इतनी उच्च कोटि की तफ़सीर है कि शायद उर्दू भाषा का साहित्य रूपी ख़ज़ाना ऐसे कांतिमान रत्न दुर्लभता से भी न निकाल सके।" (मौलाना ज़फर अली खाँ[रअ] ,संपादक अखबार *'ज़मीनदार'* लाहौर)

## हदीस सार (**Manual of Hadith**)

♦ "…..इस तरह इस के विभिन्न अध्यायों में वे सारी हदीसें (और आयतें) आ गई हैं जिन की एक मुसलमान को अपने दैनिक जीवन में आवश्यकता पड़ सकती है …… यह इतना बड़ा महाकार्य है जो एक *'अहमदी'* के हाथों सम्पन्न हुआ ,इस श्रेष्ठ कृति की नुकताचीनी या छिद्रान्वेषण कोरी मूर्खता है।" (मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रअ])

# अंग्रेज़ी संपादक की ओर से .....

हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब (१८३५ ई. से १९०८ ई.) ने अपना यह 'शांति संदेश' ( 'पैग़ामे सुलह' ) अपने जीवन के अंतिम दो–तीन दिनों में लिखा। मई १९०८, यानि अपनी ज़िन्दगी का आख़री महीना आपने लाहौर में व्यतीत किया। यह संदेश वास्तव में एक सद्भावपूर्ण अपील है, जिस में भारत के हिन्दुओं और मुसलमानें से आग्रह किया गया है कि वे आपसी द्वेष, घृणा और शत्रुता को त्याग कर एक दूसरे के धर्म के प्रति आदर–सम्मान प्रकट करें। इस्लाम की ओर से हज़रत मिर्ज़ासाहिब ने एलान किया कि मुसलमान इस बात को मन से स्वीकार करने केलिए तैयार हैं कि भारत वर्ष के समस्न प्राचन ऋषि–मुनि इश्वर के भेजे हुए आदरणीय महापुरुष थे, वह इस तरह कि कुर्आन की शिक्षानुसार अल्लाह के भेजे हुए पैग़म्बर–अवतारों और दिव्य ग्रन्थों का अवतरण संसार के प्रत्येक समाज और प्रत्येक राष्ट्र में हुआ है। आप ने हिन्दू भाइयों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे भी बदले में हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद सल्ल. को अल्लाह का सच्चा पैग़म्बर मान लें और आप के प्रति अपशब्दात्मक भाषा का प्रयोग छोड़ दें। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि १९वीं सदी के उत्तरार्ध में आर्यसमाज नामक एक आक्रमक हिन्दू सम्प्रदाय का उदय हुआ। हज़रत मिर्ज़ा साहिब के काल में यह सम्प्रदाय हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद सल्ल. के विरुद्ध विषवमन करते हुए एक अति अभद्र साहित्य का प्रकाशन कर रहा था। इस सम्प्रदाय के उत्तेजक लेखों से हिन्दु–मुस्लिम शांति केलिए ज़बरदस्त ख़तरा पैदा होगया था। ऐसे में हज़रत मिर्ज़ा साहिब ने एक शांति–समझौते का प्रस्ताव रखा, जिसके अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानों --- दोनों को यह प्रतिज्ञा करनी थी कि अब वे भविष्य में एकदूसरे के धर्म पर आक्रमण नहीं करेंगे, एकदुसरे के सम्मान्य धर्मप्रर्वतकों के प्रति आदर और प्रेमभाव का प्रदर्शन करेंगे, और सब से बढ़कर यह कि एकदूसरे के प्रति संवेदना और भ्रातृप्रेम प्रकट करेंगे।

‘पैग़ामे सुलह’ वह पब्लिक लेक्चर है जिसका आयोजन ३१ मई १९०८ ई. को होने वाला था, किन्तु जैसी अल्लाह की मर्ज़ी -- हज़रत मिर्ज़ा साहिब बीमार पड़े और २६ मई को अपने विधाता के पास परलोक सिधार गए। अभी आप ने अपना लेक्चर पूरा लिपिबद्ध नहीं किया था, परन्तु उस अपूर्ण लेख में आपके संदेश का सारांश आचुका था। अतः यही तय हुआ कि इस लेक्चर को एक नई तिथि और स्थान के अन्तर्गत पढ़ा जाए।

अहमदियूया जमाअत के एक वरिष्ठ सदस्य हज़रत ख़्वाजा कमालुद्दीन साहिब ने (जो आगे चलकर वोकिन्ग मुस्लिम मिशन इंलेंड **Woking Muslim Mission England** के संस्थापक बने) हज़रत मिर्ज़ा साहिब की पाण्डुलिपि के आधार पर लेक्चर को छपवाया, और फिर यही लेक्चर २१ जून १९०८ ई. को लाहौर के यूनिवर्सिटी हाल में हज़ारों हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों के सामने पढ़ा गया। उस समय इस का अंग्रेज़ी अनुवाद भी छापा गया था।

उर्दू संस्करणों के अतिरिक्त अहमदियूया अंजुमन इशाअते इस्लाम लाहौर ने अब तक इस लेक्चर के अनेक अंग्रेज़ी संस्करण भी प्रकाशित किये। पिछला यानि १९४७ ई.वाला संस्करण इतिहास के उस महादारुण काल में निकला जब उसकी वाकयी ज़रूरत थी, क्योंकि उस समय पाक-भारत उपमहाद्वीप के हिन्दू और मुसलमान अपने धार्मिक विद्वेष के आवेश में एक दूसरे का रक्त बहा रहे थे। प्रस्तुत अंग्रेज़ी संस्करण की तैयारी में मैं ने पिछले अनुवाद की जांच करके व्यापक संशोधन किये हैं। पाठकों की सुविधा केलिए इस में विषय सूची और अनुक्रमणिका **(Index)** भी शामिल कर दी गई है। कुछ फुटनोट और उपशीर्षक भी जोड़ दिये गए हैं, जो लेखक की मूल हस्तलिपि में नहीं थे।

डॉ. ज़ाहिद अज़ीज़
नॉटिंघम, इंगैंड.

अगस्त १९९३

# विषय–सुची

व्यापक समवेदना —— १
समस्त लोकलोकांतरों का एकमात्र पालनहार-स्रष्टा —— २
ईश्वरीय अनुकंपा का सीमांकन करनेवाले अनुदार सिद्धांत —— ३
शांति संदेश —— ५
धार्मिक मतभेद —— ७
श्री गुरु नानक —— ८
मेरा अपना अनुभव —— ९
ईश्वरीय वाणी को सीमाओं में बांधने वाले धर्मसमुदाय —— १०
महात्मा बुद्ध —— १२
धर्मियों द्वारा धर्म का अनादर —— १३
इस्लामी शिष्टाचार —— १५
शांति का प्रस्तावित समझौता —— १७
राजनीतिक मतभेद —— १७
मुस्लमानों द्वारा दया, समवेदना और आदरभाव का प्रदर्शन —— २१
इस्लाम पर अनुचित आक्रमण —— २२
गंभीर चेतावनी —— २३
विश्वव्यापी अँधकार में हज़रत पैग़म्बरश्री का प्रदीपक उदय —— २४
हज़रत पैग़म्बरश्री का सुधार-कार्य —— २६
जिहाद यानि ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने का आरोप —— २७
प्रारंभकालीन मुसलमानों पर अत्याचार —— २९
तलवार या अध्यात्म —— ३०
पूर्ववर्ती धर्म देशगत या जातिगत थे —— ३२
इन्डेक्स या अनुक्रमिणका —— ३५

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

अल्लाह के नाम से, जो अपार दयालु,सतत् कृपालु है।

# शांति संदेश

मेरे सर्वशक्तिमान प्रभु ! मरे प्रियतम पथप्रदर्शक ! हमें वह संमार्ग दिखा जिस पर चलकर सत्यनिष्ठ तथा भक्तगण तुझ को प्राप्त होते हैं। हमें उन लोगों के मार्ग से बचा जिन का जीवन–उद्देश्य केवल विषयवासना, ईर्ष्या–द्वेष या सांसारिक मोहमाया है।

तो मित्रो ! हम सब – चाहे हिन्दू हों या मुसलमान – सैकड़ों मतभेदों के बावजूद इस धारणा में नितांत एकमत हैं कि ईश्वर ही संसार का एकमात्र स्रष्टा व स्वामी है। पुनः, हम सिर्फ़ मनुष्यता के नाते ही एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं, बल्कि एक ही देश के वासी होने के नाते भी एक दूसरे के पड़ोसी हैं। अतः हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम विशुद्ध मन और नेक नीति से एक दूसरे के सुहृद् मित्र बन जाएं, और भौतिक तथा धार्मिक संकटों और कठिनाइयों में परस्पर सहानुभूति प्रदर्शित करें – हमदर्दी और सौहार्द का ऐसा अनूठा प्रदर्शन कि मानो एक ही शरार के सहयोगी अंग हों।

**व्यापक समवेदना**

प्रिय देशवासियों ! वह धर्म धर्म कहलाने योग्य ही नहीं जिसमें निष्पक्ष एवं व्यापक सहानुभूति की शिक्षा न हो, और वह मनुष्य मनुष्य कहलाने योग्य नहीं जिस के अन्दर अनुकंपी आत्मा का वास न हो। परब्रह्म परमात्मा ने किसी भी राष्ट्र या जाति के प्रति भेदभाव नहीं दिखलाया। जो शक्तियां और क्षमताएं उसने आर्यवर्त की प्राचीन जातियों को दीं बिल्कुल वही क्षमताएं और योग्यताएं उसने अरबों, फ़ारसियों (ईरानियों), चीनियों, जापानियों तथा

और अमरीका के निवासियों को भी प्रदान कीं। परमात्मा की यह विशल धरती सभी प्राणियों के लिए फ़र्श का काम देती है। सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागण सभी केलिए प्रकाश बिखेरने में, तथा अन्य प्रकार की सेवाओं में जुटे हुए हैं। सभी प्राणीमात्र प्रभु द्वारा रचित मूलतत्वों, जैसे हवा, पानी, आग, मिट्टी आदि से लाभांवित हो रहे हैं। भूमंडल पर वास करने वाली सभी जातियां समान रूप से धरती के अन्नों, फलों और जड़ीबूटियों का सेवन कर रही हैं। प्रभु–अनुकंपा का यह निष्पक्ष एवं उदार प्रदर्शन हमें यही सीख देता है कि हम भी अपने मानवसमाज के प्रति ऐसा ही निष्पक्ष और उदारतायुक्त व्यवहार करें, कभी तंगदिल या अनुदार न बनें।

प्रिय मित्रो ! यकीन मानो कि यदि हम दोनों धर्मसमुदायों में से कोई भी समुदाय प्रभु के इस दिव्य–आचरण रूपी उदाहरण की अवमानना कर अपने आचार–विचार को इसके प्रतिकूल बनायेगा, तो वह समुदाय शीघ्र ही विनष्ट होकर रह जाएगा। न केवल अपने विनाश का ही बल्कि अपनी आगामी पीढ़ियों के विनाश का भी कारण बनेगा। जब से यह दुनिया बनी है तब से समस्त देशों और कालों के सदाचारी महानुभाव यही कहते आए हैं कि हमारे मानवसमाज का स्थायित्व प्रभु के सद्गुणों के अनुसरण पर आश्रित है। और यह कि मनुष्यों के शारीरिक तथा आध्यात्मिक जीवन का माात्र आधार यही है कि वे अपना आचरण इन्ही दिव्यगुणों के अनुरूप बनाएं। क्योंकि यही सद्गुण संपूर्ण शांति का मूलस्रोत हैं।

**समस्त लोकलोकांतरों का एकमात्र पालनहार-स्रष्टा**

कुर्आन शरीफ़ का शुभारंभ एक ऐसी आयत से होता है जो प्रभु–अनुकंपा के इसी उदारभाव की ज्ञापक है :

اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ رَبِّ الْعٰلَمِیْنَ

"सब प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो समस्त ***'आलमीन'*** का पालनहार–स्रष्टा है।"

اَلْعٰلَمِیْنَ ***'आलमीन'***(***'आलम*** का बहुवचन) – इस शब्द के अन्तर्गत सभी लोक, सभी मानवजातियां, सभी जनसमुदाय, सभी पीढ़ियां, सभी राष्ट्र,

सभी काल और सभी देश आजाते हैं। इस सुखद भाव के प्रतिपादन का वास्तविक उद्देश्य उन धर्मसमुदायों का खण्डन है जो प्रभु के निष्पक्ष एवं विश्वव्यापी प्रतिपालन अथवा दयाभाव को केवल अपनी ही जाति या राष्ट्र तक सीमित रखते हैं, और अन्य मानवसमाजों अथवा धर्मसमुदायों के अस्तित्व को इतना तुच्छ और नगण्य समझते हैं कि मानो वे परब्रह्म परमात्मा की रचना ही न हों, या यह कि प्रभु ने उनको पैदा तो किया, परन्तु फिर उन्हें एक रद्दी वस्तु की भांति उपेक्षित कर दिया, या उनको भूल गया। उदाहरण के लिए, यहूदियों और ईसाइयों का आज तक यही विश्वास है कि संसार में प्रकट होने वाले तमाम **पैग़म्बर-अवतार** केवल यहूदियों के वंश में ही आर्विभूत हुए। परमेश्वर अन्य मानवसमाजों या जातियों से कुछ ऐसा अप्रसन्न और उदासीन रहा कि उनको पथभ्रष्टता और अज्ञानान्धता में ग्रस्त देखकर भी उनकी सुध न ली। बाइबिल में हज़रत ईसा(अ.स.) का यही कथन लिखा है, कि

> "मैं इस्राएल वंश की खोई हुई भेड़ों को छोड़कर अन्य किसी के लिए नहीं भेजा गया"(मत्ती १५ : २४)।

चलो कल्पना के तौर पर कुछ देर केलिए मान लें कि हज़रत ईसा (अ.स.) ने ईश्वरत्व का ही दावा किया था, लेकिन यह कैसा तंगनज़र खुदा था कि जिस ने अपनी खुदाई को सिर्फ़ इस्राईलियों तक सीमित रखा, अन्य जातियों और राष्ट्रों को उस से वंचित कर दिया। ***क्या खुदा के श्रीमुख से ऐसा ही अनुदार वाक्य मुखरित होता है*** — कि मुझे अन्य जातियों और समाजों के सुधार या मार्गदर्शन से कोई लेनादेना नहीं ?

**ईश्वरीय अनुकंपा का सीमांकन करनेवाले अनुदार सिद्धांत**

सारांश यह कि यहूदियों और ईसाइयों की यही मान्यता है कि सारे नबी, सारे पैग़म्बर केवल हिब्रू (Hebrew) जाति में ही प्रकट हुए , और यह कि ईश्वरीय ग्रन्थ भी इसी जाति के महापुरुषों पर उतारे गए। और ईसाइयों का यह भी विश्वास है कि '***वह्य***'(revelation) का दिव्य क्रम हज़रत ईसा (अ. स.) पर समाप्त हो गया, तब से खुदा के ***'इलहाम'*** पर मोहर लग चुकी है। ऐसी ही धारणा आर्यसमाज में प्रचलित है। अर्थात् जिस प्रकार यहूदी और ईसाई ***'नबूवत'*** और '***इलहाम***' को इस्राईल–घराने तक ही सीमित मानते हैं,

और अन्य जातियों को इन दिव्य वरदानों से वंचित ठहराते हैं, वैसे ही दुर्भाग्यवश आर्यसमाजियों की यह मान्यता है कि प्रभु की वाणी कभी आर्यवर्त की सीमाओं से बाहर न गई। सदा इसी देश के चार ऋषि चुने गए, और हर बार इन्ही पर वेदों का अवतरण हुआ। इतना ही नहीं बल्कि देववाणी केलिए भी सदा संस्कृत भाषा को ही माध्यम बनाया गया।

फल यह कि ये दोनों धर्मसमाज ईश्वर को ***'रब्बुल्आलमीन'***(समस्त लोकलोकांतरों का पालनहार–स्रष्टा) तसलीम नहीं करते। क्योंकि अगर वे ऐसा मानते होते तो विश्व के पालनहार–स्रष्टा को इस्राईल जाति का प्रभु या आर्यजाति का प्रभु करके न पुकारते। भला ईश्वर किसी जाति विशेष से सदैव केलिए ऐसा संबंध क्योंकर जोड़ने लगा, जिस से पक्षपात और अन्याय की साफ़ झलक नज़र आती हो ? इन्ही अवैज्ञानिक मान्यताओं के खण्डन हेतु परमात्मा ने कुर्आन शरीफ़ का शुभारंभ इस मंगलमय आयत से किया है :

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ

"सब प्रशंसा अल्लाह के लिए है जो समस्त लोकलोकांतरों का पालनहार–स्रष्टा है।"

कुर्आन शरीफ़ में इस तरह की विचारधारा को जगह जगह असत्य और निराधार बताया गया है, कि पैग़म्बरों और अवतारों का प्रदुर्भाव किसी जाति विशेष अथवा देश विशेष तक ही सीमित रहा है। इसके विपरीत ईश्वर ने किसी भी जाति या देश को उपेक्षित नहीं किया। कुर्आन शरीफ़ में नाना प्रकार के उदाहरणों द्वारा समझाया गया है कि जिस तरह परमात्मा समस्त देशों और जातियों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों की सुचारु व्यवस्था करता आया है, ठीक वैसे ही वह प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति का पर्याप्त प्रबंध भी करता आया है। उदाहरणतया, कुर्आन शरीफ़ एक स्थल पर फ़रमाता है :

اِنْ مِّنْ اُمَّةٍ اِلَّا خَلَا فِيْهَا نَذِيْرٌ

"संसार की कोई जाति ऐसी नहीं कि जिस में हमारा भेजा हुआ सचेतकर्ता प्रकट न हुआ हो।"(३५ : २४)

अतः इतना तो निर्विवाद है कि वह सच्चा और सर्वगुण सम्पन्न परमात्मा,

जिसमें आस्था रखना अनिवार्य है, वह समस्त लोकों का पालनहार–स्रष्टा है। उसकी कृपादृष्टि किसी जाति विशेष या काल विशेष तक सीमित नहीं। वही समस्त जातियों, समस्त युगों तथा समस्त राष्ट्रों का एकमात्र पालनहार–स्रष्टा है। वही समस्त दिव्य प्रसादों और वरदानों का मूलस्रोत है। समस्त शारीरिक तथा आध्यात्मिक शक्तियां उसी से प्राप्त होती हैं। वही समस्त सृष्टि–वर्गों का एकमात्र प्रतिपालक है। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व उसी के सहारे टिका हुआ है।

प्रभु का अनुग्रह व्यापक है, वह सभी मानव–जातियों, सभी देशों और सभी युगों को लाभांवित कर रहा है। और यह इस लिए कि किसी जाति या समाज को यह कहने का अवसर न मिले कि ईश्वर ने दूसरी जातियों पर कृपादृष्टि तो की लेकिन हमें वंचित ही रखा। यां यह कि अन्य जातियों के मार्गदर्शन केलए उसने अपने दिव्य ग्रन्थ तो उतारे किन्तु हमें उपेक्षित कर दिया। या यह कि अन्य युगों में वह अपनी वाणी  और चमत्कारों द्वारा प्रकट तो होता रहा किन्तु हमारे युग में छिपकर बैठ गया। अपने अनुग्रह और अपनी दयालुता का विश्वव्यापी प्रदर्शन करके प्रभु ने व्यवहारिक रूप से यह बता दिया कि ये सब मान्यताएं और धारणाएं अवैज्ञनिक  और भ्रांत हैं। दयामय प्रभु ने किसी भी देश, जाति या काल को अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक वरदानों से वंचित न रखाा।

**शांति संदेश**

अब जबकि हमारे प्रभुवर की अनुग्रहशीलता इतनी सुविशाल और व्यापक है, तो भक्त होने के नाते हमारा भी यह कर्तव्य बनता है कि हम इस सद्भाव का अनुकरण करें। हे देशबंधुओ ! इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित मैं इस लघु आलेख को सादर आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ इस आलेख का  नाम मैं ने ***"शांति संदेश"*** रखा है। मेरी प्रभु से सविनय प्रार्थना है कि वह स्वयं अपनी दिव्य प्रकाशना द्वारा तुम्हें यक़ीन दिलाए कि हमारे इस सौहार्दपूर्ण मैत्री संदेश के पीछे हमारा कोई स्वार्थ या महत्त्वाकंक्षा नहीं है। प्रिय मित्रो ! परलोक की बातें तो जनसाधारण पर अकसर गुप्त ही रहती हैं, ये रहस्य केवल उन्ही महा पुरुषों पर खुलते हैं जो मरने से पहले ही मर

जाते हैं।[1] परन्तु इस संसार के अच्छे–बुरे को प्रत्येक दूरदर्शी मन सहज ही पहचान लेता है।

हम सभी जानते हैं कि एकता और संगठन द्वारा उन बुराइयों पर पार पाया जासकता है, जिनको और किसी उपाय या साधन द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। अतः उचित नहीं कि हम में से कोई भी व्यक्ति स्वयं को एकता और संगठन के मंगलमय वरदानों से वंचित रखे। हिन्दू और मुसलमान भारत देश के दो ऐसे धर्मसमुदाय हैं कि जिनके बारे में यह कल्पना भी नहीं की जासकती कि कभी वे एकदूसरे को इस देश से निर्वासित कर देंगे। इसके विपरीत इन दोनों के पारस्पारिक संबंध चोली–दामन की भांति अन्योन्याश्रित हैं। यदि एक समुदाय पर कोई विपदा आजाए तो दूसरे को भी उसका भागी बनना पड़ता है। और यदि अहंकार और बड़पन की मदांधता के कारण एक समुदाय दूसरे समुदाय का तिरस्कार करेगा तो वह स्वयं भी तिरस्कार के कलंक से बच नहीं सकेगा। और यदि इन में से कोई अपने पड़ोसी के प्रति सहानुभूति नहीं दिखता तो उसका नुक़सान उस स्वयं भी भोगना पड़ेगा। यदि इन दो समुदायों में का कोई भी सदस्य दूसरे समुदाय के विनाश की योजना बनाता है, तो उस की मिसाल उस व्यक्ति जैसी होगी, कि जो मूर्खतावश उसी टहनी को काट रहा हो जिस पर स्वयं बैठा हो। मित्रो ! प्रभु की कृपा से अब आप सृशिक्षत होगए हैं, अतः अब तुम्हारे लिए यही अधिक अनुकूल और बुद्धिसंगत है कि तुम घृणा और द्वेष के स्थान पर मित्रता और प्रेमभाव को जागृत करो। सांसारिक जीवन की कठिनाइयाँ रेगिस्तान के उस सफ़र के समान हैं , जो ठीक उस समय किया जा रहा हो जब सूरज ऊपर से निरंतर आग बरसा रहा हो। ऐसे दुगर्म और दुष्कर सफ़र में एक दूसरे का साथ और सौहार्द उस शीतल जल के समान है जो इस धधकती आग को शांत कर दे , और प्यास के समय अकाल मृत्यु से बचा ले।

इतिहास के इस नाज़क मोड़ पर मैं आपको शांति का निमंत्रण दे रहा हूँ क्योंकि यह इस वक़्त की सर्वाधिक ज़रूरत है। संसार में सर्वत्र नाना प्रकार की विपत्तियों का तांडव नज़र आरहा है। भूकंप आरहे हैं , अकाल पड़

१. अर्थात् जो आध्यात्मिकता के अग्निकुण्ड में अपने संपूरण भौतिक स्वरूप की आहुति डालने का अद्भुत साहस प्रदर्शित करते हैं।(अनुवादक)

रहा है और इधर प्लेग ने भी पीछा नहीं छोड़ा। और परमेश्वर ने आकाशवाणी द्वारा जो सूचना मुझे दी है, वह भी यही है कि यदि संसार अपने कुकर्मु को छोड़ पश्चाताप नहीं करेगा तो उस पर और अधिक कठोर प्रकोप उतरेंगे। एक मुसीबत समाप्त न हुई होगी कि दुसरी प्रकट हो जाएगी। परिणामतः मनुष्य सत जाएंगे, और पुकार उठेंगे कि अब क्या होने वाला है ? बहुतेरे लोग कष्टों और कलेशों के इस विकट भंवर में फँस कर अपना मानसिक संतुलन खो बैठें गे।

सो हे देशबंधुओ ! सावधान होजाओ, और समय रहते संभल जाओ। और चाहिये कि हिन्दू और मुसलमान आपस में शांति समझौता कर लें। यदि किसी एक समदाय की ओर से दूसरे समुदाय का अहित हो रहा हो, और जो इस शांति समझौते में बाधक बन रहा हो, तो उसे इसका परित्याग करना होगा, अन्यथा इस सारे वैर–द्वेष का पापदोष उसी के सिर होगा।

**धार्मिक मतभेद**

पूछा जासकता है कि यह शांति समझौता क्योंकर संभव हो सकता है, जबकि मतभेदों का क्षेत्र दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है ? मेरा उत्तर यह है कि वास्तव में धार्मिक मतभेद वही कहलाऐगा जिस का आधार न्याय, तर्क और प्रत्यक्ष अनुभव हो। इन्सान को बुद्धि और विवेक का अनमोल वरदान इसी लिये मिला है कि वह ऐसा मार्ग अपनाए जो बुद्धि, न्याय और हमारे दैनिक अनुभवों के प्रतिकूल न हो। छोटेछोटे मतभेद शांति की स्थापना में बाधा नहीं बन सकते। शांति के भंजक वही मतभेद हैं जिनके कारण एक पक्ष दूसरे पक्ष के माननीय पैग़म्बर या अवतार, अथवा आदरणीय धर्मग्रन्थ की अवहेलना या निरादर करता है। एकता और शांति के अभिलाषी सज्जनों को यह जान कर परम हर्ष होगा कि इस्लाम की प्रत्येक शिक्षा वैदिक धर्म के किसी न किसी सिद्धांत में अन्तर्निहित है। उदाहण केलिए, हिन्दुओं के नवोदित सम्प्रदाय ***आर्यसमाज*** ने इस मत को मूल–सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया है कि वेदों की प्रकाशना के पश्चात् ***'वह्य'***(Revelation) और ***इलहाम*** का द्वार सदासर्वदा केलिए सील–बन्द होगया। हालाँकि वेदों के अवतरण के बाद भी हिन्दू समाज में समय समस पर ***'अवतार'*** प्रकट होते रहे हैं, जिन के करोड़ों अनुयायी आज तक इसी देश में विद्यमान हैं। इन

अवतारों का प्रकटन आर्यसमाज की इस (तथाकथित) मूलभूत मान्यता का प्रत्यक्ष खंडन है। इन्ही अवतारों में श्री कृष्ण भी हैं, जो समूचे भारतवर्ष में , विशेषकर बंगाल में, परम श्रद्धास्पद हैं। वे स्वयं को ***श्रुति ('वह्य')*** द्वारा प्रेरित बताते हैं। उनके अनुयायी तों उन्हें साक्षात भगवान् ही मानते हैं। निस्संदेइ श्री कृष्ण अपने युग के पैग़म्बर थे, अवतार थे, और परमेश्वर उन से वार्तालाप करता था।

**श्री गुरु नानक**

ऐसे ही इस कलियुग में हिन्दुओं के मध्य से बाबा नानक का उदय हुआ, जिन को सारा देश एक महान सन्त के रूप में जानता और मानता है। आपके अनुयायी 'सिख' कहाते हैं, जिन की संख्या बीस लाख से कम नहीं। बाबा साहिब अपनी जन्म साखियों और ग्रन्थ साहब में अनेकशः साफ़ साफ़ दावा करते हैं कि उन्हें ***'इलहाम'*** (आकाशवाणी) का दिव्य वरदान प्राप्त है। और अपनी एक जन्मसाखी में यह भी लिखते हैं, कि मुझे ईश्वर ने अपनी आकाशवाणी द्वारा बताया कि ***'इस्लाम'*** सच्चा धर्म है। इसी कारण उन्हों ने ***'हज्ज'*** भी किया, और तमाम इस्लामी सिद्धांतों को पूर्णरूपेण अपनाया। यह भी एक वास्तविकता है कि उनके द्वारा चमत्कार और अलौकिक चिन्ह प्रकट हुए। इस बात में लेश मात्र संदेह नहीं कि बाबा नानक एक सदाचारी महापुरुष थे, और परमात्मा के उन परम भक्तों में से थे जिनको परमात्मा अपने प्रेमरस का स्वयं अमृतपान कराता है। उनका जन्म हिन्दू समाज में सिर्फ इस लिए हुआ, कि वे अपने जातिजनों के समक्ष यह साक्षी प्रस्तुत करें कि *इस्लाम साक्षात ईश्वरीय धर्म* है। डेरा नानक में स्थित आपके पवित्र अवशेष (Relics) आज भी इस बात की साक्षी देते हैं कि बाबा साहिब को इस्लामी ***'कलिमा' - ला इलाहअ इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह*** (अल्लाह के सिवा और कोई ईश्वर नहीं और मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह के रसूल हैं) – पर पूर्ण विश्वास था। और ज़िला फ़िरोज़ पूर के गुरु हरसहाय में स्थ्ति पवित्र अवशेषों में क़ुर्आन शरीफ़ की एक प्रति भी सम्मिलित है। इन तथ्यों के रहते किस को शंका हो सकती है कि बाबा नानक ने अपने निर्मल हृदय और परवत्र स्वभाव और श्रद्धायुक्त साधनाओं से उस रहस्य को पा लिया जो पाखंडी पंडितों से गुप्त रहा। उन्हों ने ईश्वरीय वाणी की

प्राप्ति का दावा करके और प्रभु की ओर से चमत्कार और दिव्य चिन्ह दिखला कर उस सिद्धांत का खूब खंडन किया जिसके अंतर्गत यह कहा जाता है कि वेदों के अवतरण के पश्चात् कोई ईश्वाणी नहीं। निस्संदेह बाबा नानक का व्यक्तित्व हिन्दुओं के लिए प्रभु की दयालुता का एक मूर्त प्रदर्शन था, यों भी कह सकते हैं कि वे एक तरह से हिन्दू धर्म के अन्तिम अवतार थे, जिन्हों ने उस नफ़रत और घृणा को दूर करना चाहा जो इस्लाम के प्रति हिन्दुओं के दिलों में पाई जाती थी। परन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि हिन्दुओं ने बाबा नानक के उपदेशों से लाभ नहीं उठाया, उलटा पंडिन–पांडे उन के दुश्मन बन गए कि क्यों वे इस्लाम की जगह जगह प्रशंसा करते हैं। यदि आपके पवित्र व्यक्तित्व और सजीव उपदेशों से यथोचित लाभ उठाया जाता, तो आज हिन्दू और मुसलमान सौहार्द और एकता के सूत्र में बंधे होते। रोना तो इस बात का है कि ऐसा महान सद्पुरुष संसार में आया और चला गया, लेकिन अफ़सोस अज्ञानी जनों ने उसके प्रकाश को ग्रहण न किया। फिर भी वे इतना तो सिद्ध कर ही गए कि ईश्वर की ***'वह्य'***(Revelation) और उसके ***इलहाम*** का द्वार कभी बन्द नहीं हुआ, और यह कि ईश्वर अपने चमत्कार और चिन्ह अपने प्रतिष्ठित भक्तों द्वारा सदा ही प्रकट करता आया है। वे इस बात की भी गवाही दे गए कि इस्लाम से बेर वास्तव में उस आध्यात्मिक प्रकाश से बेर है जो आसमान से उतरा है।

**मेरा अपना अनुभव**

मेरा अपना अनुभव भी यही है कि ईश्वरीय वाणी और ईश्वरीय अनुभूति का सिलसिला हमारे युग से काटा नहीं गया। ईश्वर तो पहले की तरह अब भी (अपने परम भक्तों से ) वार्तालाप करता है, पहले ही की तरह अब भी लोगों की विनति सुनता है। उस के सभी सद्गुण और विशेषण शाश्वत और अपरिवर्तनीय हैं। मुझे लग भग तीस वर्षों से ईश्वरीय वार्तलाप का सौभाग्य प्राप्त है। प्रभु ने मेरे हाथ पर सैंकड़ों दिव्य चिन्ह और चमत्कार प्रकट किए, जिन को हज़ारों लोगों ने देखा, और वे किताबों और समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हो चुके हैं। कोई जाति, राष्ट्र या धर्मसमुदाय ऐसा नहीं जो किसी न किसी ईश्वरीय निशान का प्रत्यक्षदर्शी न बना हो।

इतने प्रबल और संभूत प्रमाणों के रहते भला आर्यसमाजियों का यह

सिद्धांत कैसे स्वीकार किया जा सकता है, जिसको उन्हों ने अन्यायतः वेदों पर आरोपित किया है, वह यह कि आकाशवाणी का द्वार वेदों के अवतरण के बाद सदासर्वदा केलिए बन्द होचुका है, और तदुपरांत मानवसमाज को केवल कथाकहानियों के सहारे ही छोड़ दिया गया है।

इसी अवैज्ञानिक सिद्धांत के अधार पर वे यह घोषणा भी करते हैं कि वेदों को छोड़ संसार के अन्य सभी ईश्वरीय ग्रन्थ (ईश्वर न करे) मनगढ़ंत और कपोल कल्पित हैं। हालांकि ये ग्रन्थ अपनी सत्यता के प्रमाण वेदों से कहीं ज़्यादा ही प्रस्तुत करते हैं। प्रभु का हाथ भी उनका सहायक है, और प्रभु के दिव्य चिन्ह और चमत्कार भी उनकी सत्यता को सत्यापित करते हैं। तो फिर यह कैसे हो सकता है कि वेद तो ईश्वरीय शब्द हों किन्तु ये अन्य ग्रन्थ ईश्वरीय वाणी न हों ? और चूंकि परमेश्वर का व्यक्तित्व अत्यन्त रहस्यमय और अदृश्यतम है, इस लिए अक़्ल भी यही चाहती है कि वह अपनी सत्ता का साक्षात्कार कराने केलिए मात्र एक ही ग्रन्थ पर बस न करे, बल्कि विभिन्न देशों में अपने पैग़म्बर और अवतार भेजकर उन पर अपनी दिव्यवाणी की प्रकाशना करे, ताकि कमज़ोर मनुष्य जो बहुत जल्द शंकाग्रस्त हो जाता है, उस परम प्रभु की सत्ता पर विश्वास लाने से वंचित न रहे।

**ईश्वरीय वाणी को सीमाओं में बाँधनेवाले धर्मसमुदाय**

अक़्ल इस बात को स्वीकार करने केलिए कदापि तैयार नहीं कि वह ईश्वर जो संपूर्ण ब्रह्मांड का प्रतिपालक है, जो अपने सुर्य द्वारा पूरब और पश्चिम को समान रूप से रोशन करता है, आवश्यकतानुसार प्रत्येक भूभाग पर अपना जल बरसाता है, वही ईश्वर आध्यात्मिक मामलों में इतना तंगदिल और कंजूस बन जाए कि अपने सभी वरदानों को बस एक ही जाति, एक ही देश और एक ही भाषा तक सीमित कर दे। मैं समझ नहीं सकता कि यह किस तरह की युक्ति और किस प्रकार का दर्शन है कि परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति की विनति और प्रार्थना को उसकी मातृभाषा में तो सुन लेता है, और नफ़रत नहीं करता , लेकिन उसे इस बात से सख़्त नफ़रत है कि वैदिक संस्कृत को छोड़ किसी और भाषा में अपनी वाणी प्रकट करे। यह दर्शन (Philosophy), यह वेदविद्या उस रहस्यमय गुत्थी की भांति है जिस को

मनुष्य आज तक सुलझा न सका। में वेदों को इस मामले में बिल्कुल निर्दोष मानता हूँ। वे कभी ऐसी अवैज्ञानिक और बुद्धिविरुद्ध शिक्षा नहीं दे सकते जिस से परमेश्वर के परमपावन व्यक्तित्व पर पक्षपात और तरफ़दारी का कलंक लगता हो। वास्तव में होता यों है कि जब किसी ईश्वरीय ग्रन्थ के अवतरण पर लम्बा ज़माना बीत जाता है तो उसके अनुयायी अज्ञानवश या फिर स्वार्थवश अपने संकीण विचार और मत उसके साथ जोड़ते चले जाते हैं। और चुंकि ये प्रक्षेपककर्ता विभिन्न मतमतांतरों के लोग होते हैं, इसलिए कालांतर में एक धर्म के सैंकड़ों सम्प्रदाय और पंथ बन जाते हैं। अजीब संयोग है कि जिस प्रकार आर्यसमाजियों की यह मान्यता है कि ईश्वरीय वाणी का आविर्भाव सदा आर्यवर्त और आर्यकुलों में ही होता रहा है, और यह कि परमेश्वर ने सदा वैदिक संस्कृत को ही अपनी दिव्य वाणी का माध्यम बनाया, बिल्कुल यही धारणा यहूदियों की अपने कुल और अपने धर्म ग्रन्थों के बारे में है। वे भी यही मानते हैं कि इब्रानी (Hebrew) ही एकमात्र ईश्वरीय भाषा है, और यह कि ईश्वाणी का प्रकटन सदा इस्राईल जाति और इस्राईल देश में ही हुआ है। यदि कोई ग़ैरइस्राईली व्यक्ति नबी होने का दावा करे, तो वे उसे (अल्लाह न करे) झूठा समझते हैं। विचारधाराओं का यह अद्‌भुत साम्य आश्चर्यजनक तो है ही, लेकिन संसार में और भी अनेक धर्मसमुदाय ऐसे हैं जो अपने बारे में बिल्कुल ऐसा ही विश्वास रखते हैं, जैसे पारसी (Zoroastrian) लोग। ये अपने धर्म का उदय वेदों से भी कई अरब वर्ष पहले का बताते हैं। परन्तु यही तथ्य स्वतः इस बात को ज्ञापित करते हैं, कि ईश्वाणी को अपने ही देश, अपनी ही जाति या अपनी ही भाषा तक सीमित ठहराने की यह भावना वास्तव में उन के अल्पज्ञान तथा अनुचित पक्षपात की द्योतक है। प्राचन काल में ऐसे भी दौर गुज़रे हैं जब एक जाति दूसरी जाति के हालात से, और एक देश दूसरे देशों के अस्तित्व से बेखबर था।ऐसे में बिल्कूल स्वभविक था कि जब किसी जाति को कोई दिव्य ग्रन्थ दिया जाता, या उन के मध्य किसी पैग़म्बर–अवतार का आविर्भाव होता, तो वह यही समझ लेती कि ईश्वाणी का दिव्य वरदान प्राप्त करने वाली वह अकेली जाति है, और यह कि आसमानी मार्गदर्शन पाने की वह अकेली हक़दार है, संसार की कोई भी अन्य जाति इस ईश्वरीय वरदान का पात्र

नहीं बन सकती। इस ग़लत मान्यता ने दुनिया को बहुत नुक़सान पहुँचाया है। जातियों और धर्मों के आपसी भेदभाव और ईर्ष्या–द्वेष का मूल कारण भी यही है। लम्बे समय तक मानव जातियाँ एक दूसरे से अनभिज्ञ रहीं। एक देश दूसरे देश से इतना अनजान था कि भारतवर्त के प्राचीन विद्वानों का यह विचार था कि हिमालय के उस पार कोई आबादी ही नहीं। पर जब अज्ञान का परदा हटा, और संसार की विभिन्न जातियाँ एक दूसरे के संपर्क में आईं, उस समय तक वे सब भ्रांत धारणाएं जो लोगों ने अपने ऋषियों और पैग़म्बरों तथा अपने ईश्वरीय ग्रन्थों के बारे में गढ़ ली थीं वे जनमानस के मनमस्तिष्क में खूब जढ़ पकड़ चकी थीं। और प्रत्येक जाति यही समझती थी कि ईश्वरीय वरदानों और लीलाओं का एकमात्र कैन्द्र उसी का देश है। और चूंकि उस ज़माना में अकसर जातियों पर अशिष्टता और बर्बरता का भून सवार था, अतः प्रचलित रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने वालों को तलवार से मार दिया जाता था। किसी की मजाल न थी कि धर्मसमुदायों की आत्मप्रशंसा के इस धधकते आवेश को शांत कर, उन के बीच शाँति और एकता का संचार करता।

**महात्मा बुद्ध**

गौतम बुद्ध ने ऐसा करना चाहा। वह वेदों को परमेश्वर की पहली और अन्तिम वाणी नहीं समझता था। और न ही यह मानता था कि ईश्वरीय वाणी किसी एक देश, जाति या भाषा की बपौती है। फलतः उसको इस बात से साफ इन्कार था कि ईश्वरीय ज्ञान का हक़ भारत देश, संस्कृत भषा और ब्राह्मण–वर्ग के नाम पंजीकृत हो चुका है। इस विसम्मति के कारण उसे घोर यातनाएं सहना पड़ीं। उसे धर्मवहीन और नास्तिक भी कहा गया। ठीक वैसे ही जैसे ईसाई धर्मगुरु यूरोप और अमरीका के उन जिज्ञासुओं को नास्तिक कहते हैं, जिन्हें न तो ईसा मसीह की ईश्वरता पर विश्वास है और न वे मन से इस बात को मानने केलिए तैयार हैं कि कभी ईश्वर को भी सूली की मौत मारा जासकता है। गौतम बुद्ध को भी इसी प्रकार का नास्तिक ठहराया गया।[1] दुष्ट विरोधियों की सदा से यही रीति चली आई

1श्री रामकृष्ण मिशन वाले आज गौतम बुद्ध को एक महान हिन्दू अवतार मानते हैं, यही मत और बहुत से विचारशील हिन्दू विद्वानों का है। (अनुवादक)

है कि वे जनमानस के दिलों में नफ़रत और आक्रोश पैदा करने केलिए अपने प्रतिद्वंदियों पर झूठे और निराधार लांछन लगाते हैं। गौतम बुद्ध के साथ भी यही सब हुआ। परिणामतः उसे ( अर्थात् उसके संदेश को) अपनी ही जन्मभूमि भारत से निष्कासित होना पड़ा। हिन्दू लोग अभी तक बौधधर्म और उसकी सफलताओं को घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। हज़रत ईसा का कथन है :

" पैग़म्बर–अवतार को अपने ही देश में सम्मान प्राप्त नहीं होता।" अन्य देशों में जाकर गौतम बुद्ध के मिशन को आशातीत सफलता मिली। आज संपूर्ण मानवजाति का एकतिहाई भाग बौधधर्म का ही अनुयायी बताया जाता है। अनुयायिओं की संख्या की दृष्टि से चीन और जापान बौधधर्म के प्रमुख कैन्द्र हैं, वैसे यह धर्म सुदूर रूस और अमरीका तक फैल चुका है।

**धर्मियों द्वारा धर्म का अनादर**

अब हम फिर अपने मूल विषय की ओर आते हैं। तो जब तक एक धर्मसमुदाय दूसरे देशों में प्रचलित धर्मों से बेखबर था, वह सम्भवतः अपने धर्ममत और अपने धर्मग्रन्थ को सत्य का मात्र भंडार समझकर उस के साथ चिमटा रहा। पर जब विभन्न देशों के वासियों को एक दूसरे के अस्तित्व की जानकारी मिली, और वे एक दूसरे के धर्म–सिद्धांतों से परिचित हुए , तब उन केलिए एक दूसरे के धर्मसिद्धांतों को समान रूप से मान्यता देना कठिन होगया। इधर अमर्यादित कल्पनाओं ने कालांतर में प्रत्येक धर्म को अतिशय महिमा–मण्डित कर दिया था, इस महिमा–जाल को तौड़ेना सरल कार्य न था। परिणामतः प्रत्येक धर्म के अनुयायिओं ने दूसरों के धर्मसिद्धांतों का खंडन शुरू कर दिया। उदाहरण केलिए, पारसी धर्म के अनुयायिओं ने घोषणा कर दी कि संसार का कोई भी धर्म उनके धर्म की तुलना नहीं कर सकता, पैग़म्बर और अवतार केवल उन्हीं के वंश में प्रकट हो सकते हैं, और यह कि उनके धर्मशास्त्र संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं – इस मामले में वेदों की पुरातनता भी फीकी पड़ जाती है। अतिशयोक्तिपूर्ण दावों में यहूदी भी पीछे नहीं रहे। उन्हों ने परमेश्वर का सिंहासन सदासर्वदा केलिए फ़िलस्तीन में स्थ्ति कर दिया। उनकी मान्यता अनुसार सिर्फ यहूदी जाति के विशिष्ठ व्यक्ति ही ***'नबूवत'***(Prophethood) के पवित्र पद पर आसीन हो सकते थे,

और वह भी इस शर्त के साथ कि वे अन्य जातियों का मार्गदर्शन न करें गे। यहूदियों ने ईश्वरीय वाणी को अपने ही घराने के नाम पंजीकृत कर रखा था, यदि कोई अन्य जाति का सदस्य ***'वह्य'*** या ***'इलहाम'*** पाने का दावा करता तो उसे झूठा समझा जाता।

बिल्कुल इसी प्रकार की धारणाएं आर्यवर्त में प्रचलित थीं। उन की मान्यतानुसार परमेश्वर केवल आर्यदेश का ही *'राजा'* है, और राजा भी ऐसा जिसको अन्य देशों का ज्ञान तक नहीं। युक्ति और तर्क के बिना ही यह मान्यता बना ली गई कि परमेश्वर को आर्यवर्त की जलवायु से ही अनुराग है, उसे कभी इस बात का विचार ही नहीं आता कि वह अन्य देशों में जाए और वहाँ के वासियों की भी सुध ले जिन्हें पैदा करके वह भूल गया है। प्रिय मित्रो ! तनिक खुदा के लिए सोचो, और बताओ क्या इस तरह की मान्यताएं बुद्धिसम्मत हैं ? क्या इन्सान की *फ़ितरत* (सहज स्वभाव) इसको क़बूल कर सकती है ? यह बात मेरी समझ से बाहर है, कि यह कैसा विवेक और कैसी बुद्धिमानी है कि एक ओर तो ईश्वर को सर्वसंसार का परमेश्वर माना जाए, और फिर उसी मुँह से यह भी कहा जाए कि उसका प्रतिपालन या कृपादृष्टि समूचे संसार के लिए नहीं वरन् एक जाति विशेष, एक देश विशेष केलिए है।

हे बुद्धिमानो ! क्या तुम्हें प्रभु के भौतिक वरदानों में इस तरह का पक्षपात मिलता है ? यदि नहीं, तो फिर उसके आध्यात्मिक वरदानों के वितरण में यह पक्षपात कैसा ? बुद्धि और विवेक से काम लें तो हम किसी भी कर्म के अच्छे या बुरे परिणाम का सहज ही पता लगा सकते हैं। अतः मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि ईश्वर के इन माननीय पैग़म्बरों और अवतारों के अपमान का परिणाम कितना ख़तरनाक, कितना भयंकर हो सकता है, क्योंकि ये महा पुरुष मानवसमाज के सभी वर्गों के करोड़ों इन्सानों की श्रद्धा और निष्ठा के पात्र हैं। संभवतः कोई जाति या धर्मसमाज ऐसा नहीं कि जिस ने इस निन्दा के दुष्परिणामों का न्यूनाधिक सवाद न चखा हो। प्रिय मित्रो ! चिरकाल के अनुभवों और परीक्षाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि अन्य जातियों के पैग़म्बरों और अवतारों का अपमान करना, या उन के बारे में अपशब्द मुँह से निकालना, दोनों उस घातक विष के समान हैं जो शरीर के साथ साथ आत्मा का भी वध कर देता है, और मनुष्य दोहरी

बर्बादी का भागी बनता है।

वह देश कभी सुख–शांति से नहीं रह सकता जिसके वासी एक–दूसरे के धार्मिक पथप्रदर्शकों अथवा धर्मप्रवर्तकों की निन्दा या उनके मानसम्मान पर आक्रमण करते हों। वे दो जनसमुदाय भी परस्पर सद्भाव और एकता नहीं दिखा सकते, जिन में का एक या दोनों ही पक्ष एक दूसरे के पैग़म्बर, अवतार या आध्यात्मिक गुरुओं के प्रति अशिष्ट एवं अपमानजनक भाषा इस्तेमाल करते हों। अपने पैग़म्बर, अवतार या आध्यात्मिक गुरु की निन्दा सुनकर भला कौन उत्तेजित नहीं हो उठेगा ?

विशेषकर मुसलमान एक ऐसा धर्मसमुदाय है जो अपने प्रिय पैग़म्बर को ईश्वर या ईश्वर का पुत्र तो नहीं कहते, लेकिन आपको उन सभी महा पुरुषों में श्रेष्ठतम विश्वास करते हैं जो माँ के पेट से निकले। अतः एक सच्चे मुसलमान के साथ शाँति और मित्रता उस वक्त तक संभव ही नहीं जब तक उसके पाक पैग़म्बर के प्रति हर अवसर पर शिष्ट और आदरयुक्त भाषा का प्रयोग न किया जाए।

**इस्लामी शिष्टाचार**

रही हम मुसलमानों की बात, तो हम कभी अन्य जातियों के पैग़म्बरों या अवतारों के प्रति अशिष्ट भाषा प्रयुक्त नहीं करते। बल्कि हमारी तो यही मान्यता है कि संसार की विभिन्न जातियों में प्रकट होने वाले पैग़म्बर और अवतार, कि जिन्हें करोड़ों इन्सानों ने स्वीकारा, और जिन्हों ने मानवसमाज के एक बहुत बड़े भाग की श्रद्धा पाई, और जो अत्यन्त चिरकाल से सम्मान्य और पूज्य बने हुए हैं – वे सब के सब अल्लाह के सच्चे पैग़म्बर–अवतार थे। यही प्रधान लक्षण उनकी सत्यता के साक्षी हैं। यदि वे ईश्वर की ओर से न होते तो इस तरह करोड़ों दिलों की क़बूलियत और स्वीकृति के अद्भुत भाजन न बनते। परमेश्वर कभी किसी और को वह प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं देता जिसे उस ने अपने परम भक्तों केलिए विशिष्ट कर रखा है। यदि कोई झूठा दावेदार इनके आध्यात्मिक आसन पर आसीन होना चाहे तो उसे शीघ्र ही विनष्ट कर दिया जाता है।

इसी आधार पर हम वेदों को ईश्वरविहित ग्रन्थ, और वैदिक ऋषियों को आदरणीय पुण्यात्माएं मानते हैं। हालाँकि यह भी एक अटल वास्तविकता

है कि वैदिक शिक्षाएं ***'तौहीद'***(विशुद्ध एकेश्वरवाद) की स्थापना में पूर्णतया सफल न हो पाईं, वे इस महा कार्य के योग्य ही न थीं। मूर्तिपूजक, अग्निपूजक, सूर्योपासक, गंगापूजक, बहुदेववादी, जैनमत के अनुयायी और शाक्तमत के अनुयायी – अर्थात् भारत देश के सभी हिन्दू सम्प्रदाय अपने अपने धर्ममत का मूलाधार वेद को ही बताते हैं। ज़ाहिर है कि वेदों में इन परस्पर विरोधी मान्यताओं और व्याख्याओं के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद होगी। यह सब रहते हुए भी हमारा कुआनी शिक्षानुसार यही दृढ़ विश्वास है कि वेद मूलतः पौरुषेय–ग्रन्थ नहीं, क्योंकि मनुष्य की रचना में इतनी शक्ति नहीं होती कि करोड़ों इन्सानों को अपनी ओर आकर्षित कर सके, और युगों–युगों से धर्मविधान के रूप में क़ायम रहे।

यद्यपि वेदों में पाषाण–पूजा का होई विधान नहीं, परन्तु अग्नि, वायु, जल, सूर्य और चंद्रमा आदि की पूजा का विपुल समर्थन है। एक भी वेद–वाक्य ऐसा नहीं कि जिस में इन भौतिक पदार्थों की पूजा का निषेध हो। ऐसी परिस्थिति में हम यह कैसे मान लें कि इन पदार्थों की पूजा करने वाले सभी प्राचीन हिन्दू सम्प्रदाय ग़लत हैं, और नवस्थापित आर्यसमाज ही सही है ? जो लोग वेदों के आधार पर इन चीज़ों का पूजन करते हैं वे अपने पक्ष में यही प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि इन वस्तुओं के पूजन का वेदों में स्पष्ट उल्लेख है, निषेध कहीं भी नहीं। आर्यसमाजियों का यह आग्रह, कि अग्नि, जल, वायु सरीखे शब्द परमेश्वर के विभिन्न नाम हैं – एक कोरे दावे के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह दावा अभी तक प्रमाणित नहीं हो पाया है। यदि इस दावे में सच्चाई होती तो कोई कारण न था कि बनारस तथा अन्य हिन्दू शहरों के महा पंडित आर्यसमाज के इस दृष्टिकोण को स्वीकार न करते। तीस–पैंतीस वर्षों के भरसक प्रयासों के बावजूद बहुत ही कम हिन्दुओं ने आर्यसमाजी मत को स्वीकारा है। सनातन धर्म व अन्य हिन्दू सम्प्रदायों की तुलना में आर्यसमाजियों की संख्या नगण्य है। और आर्यसमाज के सिद्धांतों का भी हिन्दुओं के अन्य सम्प्रदायों पर कोई ख़ास प्रभाव नहीं पड़ा है।

इसी प्रकार ***"नियोग"*** का सिद्धांत भी वेदों के ही मत्थे मढ़ा गया है। हालाँकि मानवीय गरीमा और शालीनता इस घृणित सिद्धांत का कभी

समर्थन नहीं करती। हम तो इस सिद्धांत को वैदिक शिक्षा ही नहीं मानते। हमारा ईमानदाराना विश्वास यही है कि ऐसी शिक्षाएं उत्तरकालीन युग में किसी स्वार्थी प्रयोजन के अन्तर्गत पवित्र वेदों के प्रति आरोपित या उन में प्रविष्ट की गई। वेद चुंकि प्राचन ग्रन्थ हैं, इस लिये अति संभव है कि उत्तरकालीन पंडितों ने वेदों में कई प्रकार की काँटछाँट की हो। हमारे लिए वेदों की सत्यता का इतना सबूत काफी है कि आर्यवर्त के करोड़ों इन्सान हज़ारों वर्ष से इसको ईश्वर की वाणी मानते चले आये हैं। और यह संभव नहीं कि किसी मिथ्या रचनाकार की वाणी को यह व्यापक सम्मान और स्वीकृति मिल सके।

जब इतनी विसंगतियों के रहते, केवल प्रभुभयवश हम वेदों को ईश्वरीय वाणी मानते हैं, और वैदिक शिक्षा की समस्त त्रुटियों को उत्तरकालीन भाष्यकारों एवं टीकाकारों की गलतियाँ माने हैं, तो फिर कुर्आन शरीफ़ पर अमानवीय आक्रमण क्यों किये जाते हैं ? उसी पवित्र कुर्आन पर आक्रमण जिस ने कहीं भी सूर्यपूजा, चन्द्रपूजा या किसी और वस्तु की पूजा का प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि स्पष्ट शाब्दों में यही कहा :

لَا تَسْجُدُوْا لِلشَّمْسِ وَ لَا لِلْقَمَرِ وَ اسْجُدُوْا لِلّٰهِ الَّذِیْ خَلَقَهُنَّ

"सूर्य को 'सजदा' मत करो और न चन्द्रमा को, बल्कि अल्लाह को 'सजदा' करो जिस ने इन सब को पैदा किया"(४१ : ३७)।

इसके अतिरिक्त कुर्आन शरीफ़ अपने साथ नूतन और प्रचीन दिव्य चिन्हों की साक्षी भी रखता है। और दर्पण के समान हमें ईश्वर का चेहरा दिखाता है। क्यों हमारे साथ वह शिष्ट व्यवहार नहीं किया जाता जो हम आर्यसमाजियों के साथ करते हैं ? क्यों शत्रुता और घृणा का बीज हमारी इस भूमि में बोया जाता है ?आप क्या समझते हैं कि इस बीज का फल अच्छा होगा ? क्या यही शिष्टता और सद्व्यहार है कि फूल भेंट करने वाले को पत्थर मारे जाएं, और दूध पेश करने वाले पर मूत्र फैंका जाए ?

**शांति का प्रस्तावित समझौता**

यदि इस तरह के यथोचित शांति समझौते के लिए हिन्दू और आर्यसमाजी सज्जन तैयार हो जाएं, कि वे हमारे प्रिय पैग़म्बर (अल्लाह की अपार कृपा व शांति उन पर वर्षित हो ! ) को परमात्मा का सच्चा *'नबी'* मान

लें, और उनकी निन्दा और इन्कार को छोड़ दें, तो मैं सब से पहले इस शांति समझौते पर हस्ताक्षर करने केलिए तैयार हूँ कि :

"हम अहमदिय्या सम्प्रदाय के सदस्य सदैव वेदों की सत्यता में विश्वास प्रकट करें गे, और वेदों तथा वैदिक ऋषियों का आदर करें गे और प्रेमभाव से उनका नाम लें गे। यदि हम इस प्रतिज्ञा को पूर्ण न कर पाएं तो हम अपने हिन्दू भाइयों को तीन लाख रुपए बतौर जुर्माना अदा करें गे।"

यदि हमारे हिन्दू भाई भी सच्चे मन से हमारे साथ इस तरह के समझौते के इच्छुक हों, तो वे भी एक ऐसे ही प्रतिज्ञा–पत्र पर हस्ताक्षर कर दें जिस में लिखा हो :

"हम हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (अल्लाह की अपार कृपा व शांति उन पर वर्षित हो) की ***'रिसालत'***(Messengership) व ***'नबूवत'***(Prophethood) पर विश्वास लाते हैं और आपको सच्चा नबी और पैग़म्बर मानते हैं। और भविष्य में आपको उसी सम्मान और आदर से स्मरण करें गे जो एक सच्चे आस्थावान के अनुकूल है। और यदि हम इस संधिपत्र को पूर्ण करने में असफल सिद्ध हों तो अहमदिय्या सम्प्रदाय के प्रधान को तीन लाख रुपए जुर्माना के तौर अदा करने पर बाध्य होंगे।"

अहमदिय्या सम्प्रदाय की वर्तमान संख्या चार लाख से कम नहीं, अतः इतने महत्त्पूर्ण कार्य केलिए तीन लाख रुपए की व्यवस्था उनकेलिए कोई बड़ी बात नहीं। रहे वे मुसलमान जो अभी हमारे सम्प्रदाय से बाहर हैं, उनके यहाँ विचार और लक्ष्य में कोई सामंजस्य नहीं। वे ऐसे किसी नेता को नहीं मानते जिसका का आज्ञापालन उनके लिए अनिवार्य हो। अतः मैं उन के विषय में कुछ नहीं कह साता। अभी तो वे स्वयं मुझे भी ***'काफिर'***और ***'दज्जाल'*** (Antichrist) कहते हैं। फिर भी मुझे आशा है कि जब हिन्दू भाई मेरे साथ ऐसा शांतिसमझौता कर लेंगे तो फिर ये लोग भी ऐसी घुणित हरकत कभी न करें गे , कि एक सुसभ्य जाति के आदरणीय ऋषियों के प्रति कोई अपशब्द बोल कर अपने परमपावन पैग़म्बर–श्री (सल्ल.) को गालियाँ दिलवाएं। उस दशा में गालियों की तमाम ज़िम्मेदारी स्वयं मुसलमानों

पर होगी। और चूंकि ऐसा कार्य शालीनता और शिष्टाचार के सर्वथा प्रतिकूल है, अतः मुझे आशा नहीं कि इस शांति–संधि के पश्चात् अन्य मुसलमान अशिष्ट भाषा का प्रयोग करें गे। परन्तु इस समझौते को पक्का और प्रभावी बनाने केलिए ज़रूरी है कि इस पर दोनों पक्षों के कम से कम दस हज़ार बुद्धिमान सज्जन हस्ताक्षर करें।

प्रिय देशवासियो ! शांति जैसी कोई अनमोल वस्तु नहीं। आओ, हम इस शांति–संधि द्वारा एक क़ौम और एक राष्ट्र बन जाएं। आप देख ही रहे हैं कि इस आपसी कलह और वैमनस्य के कारण कितनी फूट पड़ गई है, और देश की कितनी हानि हो रही है। आओ, अब परस्पर सौहार्द और सद्भाव का नुसख़ा आज़मा कर देखें। शांति और समन्वय का यही उत्तम उपाय है। इस स्वाभविक उपाय के रहते किसी और उपाय द्वारा शांति को खोजना ऐसा ही है, कि मानो किसी फोड़े की ऊपरी चमक और स्वच्छता को देख उसे उपेक्षित कर दिया जाए, जबकि वह भीतर से सड़ी हुई बदबूदार पीप से भरा हुआ हो।

**राजनीतिक मतभेद**

मैं यहाँ उन मुद्दों में नहीं पड़ना चाहता जिन के कारण हिन्दू और मुसलमानों के बीच वैरविरोध दिनोदिन बढ़ता ही चला जा रहा है। इसके लिए केवल धार्मिक मतभेदों को ही दोषी नहीं ठहराया जासकता। बल्कि अन्य भौतिक आकांक्षाएं और गतिविधियाँ भी इस की ज़िम्मेदार हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दुओं को सदा इस बात की इच्छा रही है कि उन्हें भी देश की शासन व्यवस्था में भागेदारी मिले, या कम से कम यह कि महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मामलों में उन से भी राय ली जाए, और सरकार उनकी प्रत्येक शिकायत पर घ्यान दे, अंग्रेज़ों के समान उन्हें भी उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए। यहाँ मुसलमानों से यह गलती हुई कि उन्हों ने अपने हिन्दू भाइयों के इन प्रयासों में उनका साथ न दिया। उन्हों ने यह सोचा कि हम संख्या में कम हैं, अतः इन संयुक्त प्रयासों का सीधा लाभ अन्ततः हिन्दुओं को ही होगा, मुसलमानों को नहीं। मुसलमानों ने स्वयं को हिन्दुओं से अलग ही नहीं रखा वरन् उन का विरोध कर उनके प्रयासों में बाधक भी बने। इस व्यवहार से आपसी मनमोटाव और मनोमालिन्य में अभिवृद्धि होगई।

मैं मानता हूँ कि इस से दोनों समुदायों के बीच पुरानीशत्रुता और बढ़ गई। लेकिन मैं यह माने केलिए कदापि तैयार नहीं कि इस पारस्परिक घृणा और नफ़रत के असली कारण यही हैं। मैं उन लोगों से सहमत नहीं जो इस हिन्दू–मुस्लिम मनोमालिन्य का मूल स्रोत धार्मिक मतभेदों के बजाए राजनीतिक शत्रुता बताते हैं। कोई भी समझ सकता है कि मुसलमान हिन्दुओं के न्यायसंगत प्रयासों में उनका साथ देने से क्यों कतराते हैं, और क्यों अभी तक उनकी कांग्रेस में शामिल होने से इन्कार करते रहे हैं, और क्यों अन्ततोगत्वा मुसलमानों ने हिन्दुओं के इस क़दम के औचित्य को पहचान कर उनके समानान्तर एक अलग संस्था अखिल भारत मुस्लिम लीग की स्थपना की ?

भाइयो ! इसका मुल कारण सिर्फ़ धर्म है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। यदि यही हिन्दू ***कलमा*** *'ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'* पढ़कर मुसलमानों के गले लग जाएं या मुसलमान ही हिन्दू धर्म ग्रहण कर वेदविहत अग्नि, वायु आदि देवताओं का पुजन आरंभ कर दें, और इस्लाम को अलविदा कह दें, तो वे सारे मतभेद जिन्हें राजनीतिक बताया जाता है तत्काल ऐसे समाप्त हो जाएं कि मानो कभी मौजूद ही न हों। ज्ञात हुआ कि समस्त घृणाओं और विद्वेषों की जढ़ वास्तव में धार्मिक वेरविरोध ही है। जब जब यह धार्मिक प्रतिद्वन्दता चरमसीमा को प्राप्त हुई तब तब मानव रक्त की नदियां प्रवाहित हुई। हे मुसलमानो ! जब हिन्दू तुम्हें सिर्फ़ इस लिए पराया समझते हैं कि तुम उनके सहधर्मी नहीं, और तुम भी उन्हें इसी वजह से पराया समझते हो, अतः जब तक इस मूल कारण का निवारण नहीं हो जाता दोनों समुदायों के बीच सच्चा, स्थायी और सौहार्दपूर्ण शांति–समझौता संभव नहीं। हाँ ! कुछ देर के लिए मेलजोल और प्रेमभाव का मिथ्या पाखंड अवश रचा जासकता है। परन्तु वास्तविक प्रेम और सौहार्द की सृष्टि तभी संभव है जब दिलों की सफ़ाई हो। और यह सफ़ाई तभी होगी जब आप वेदों को तथा वैदिक ऋषियों को सच्चे मन से ईश्वर की ओर से आया हुआ मानेंगे, और इसी तरह हिन्दू भाई भी अपनी पक्षपातयुक्त संकीरण भावनाओं को तज कर हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद (सल्ल.) को परमेश्वर का सच्चा

*'नबी'* स्वीकार कर लेंगे। खूब याद रखो कि तुम्हारे और हिन्दुओ के बीच सच्ची शांति का यही एकमात्र उपाय है। यही वह जल है जो तुम्हारे दिलों की नफ़रत और घृणा को सदासर्वदा केलिए धो डालेगा। यदि इन बिछड़े समुदायों के मिलन की शभु घड़ी आ पहुंची है तो परमात्मा स्वयं इनके दिलों को इस मैत्री–प्रस्ताव के निमित खोल देगा, जिस तरह उस ने हमारे दिल को खोल दिया है।

**मुसलमानों द्वारा दया, समवेदना और आदरभाव का प्रदर्शन**

परन्तु इस मैत्री–संधि के साथ यह भी ज़रूरी है कि हम अपने हिन्दू भाइयों के प्रति स्नेह और सच्चे सौइार्द का प्रदर्शन करें, और उनके साथ सुशीलता और दयाभाव से पेश आयें। और स्वयं को उन सभी कार्यों से बचाएं जिन से हिन्दू भाइयों की भावनओं को ठेस पहुंचती हो, बशर्तेकि यह परिवर्जन इमारे अपने धर्मसंगत कर्तव्यों और अनुष्ठानों में बाधक न हो। इसी प्रकार यदि हिन्दू हमारे पैग़म्बरश्री (सल्ल.) को मन से सच्चा पैगंम्बर (अवतार) स्वीकार कर लें और उन में आस्था रखें, तो गौहत्या रूपी समस्या को भी, जिसने हम दोनों के बीच नफ़रत की खाई पैदा कर रखी है, समाप्त किया जासकता है। क्योंकि हर वैध वस्तु का सेवन हमारे लिए अनिवार्य नहीं। अनेक वस्तुऐं ऐसी हैं कि जिन्हें हम भिक्ष्य जानते हैं, परन्तु कभी उन्हें चखा भी नहीं। सहमनुष्यों के प्रति सहिष्णुता और स्नेह का व्यवहार हमारे धर्म का उतना ही महत्त्वपूर्ण अंग है, जितना यह विश्वास कि परमात्मा सर्वांग अद्वितीय है। अतः महत्त्वपूर्ण उद्देश्य केलिए किसी अनावश्यक वस्तु का परित्याग अल्लाह की ***"शरियत"*** (धर्मविधान) के विरुद्ध नहीं। किसी वस्तु के सेवन को वैध जानना, और यथार्थ में उसका सेवन करना –– यह दो अलग अलग बातें हैं। धर्म का सार बस इतना ही कि निषिध बातों से स्वयं को बचाया जाए और प्रभु–प्रसन्नता के मार्गों पर तेज़ी से कदम उठाया जाये, और संपूर्ण प्राणिमात्र के साथ प्रेम और सद्भाव प्रदर्शित किया जाए, और विश्व के समस्त पैग़म्बरों–अवतारों के प्रति एक जैसी श्रद्धा प्रकट की जाए – जिनका आविर्भाव समय समय पर होता रहा है। और मनुष्यमात्र के प्रति सदय और सेवाभाव का व्यवहार हो। यही इस्लाम धर्म का तत्त्वसार है। लेकिन हमारे लिए यह कैसे संभव है कि हम उन लोगों के साथ शांति और

सुलाह से रहें जो हमारे परमपावन पैग़म्बरश्री (सल्ल.) पर अनुचित एवं घृणित आक्षेप करते रहते हैं, और अपशब्द बोलने से बाज़ नहीं आते। मैं सच सच कहता हूँ कि हम मरुस्थल के विषीयले सर्पों और जंगल के हिंसक भेड़ियों के साथ निस्संकोच शांति–समझौता तो कर सकते हैं, लेकिन उन दुष्टजनों के साथ कदापि शांतिसंधि नहीं कर सकते जो हमारे प्यारे 'नबी' (सल्ल.) पर, जो हमें अपने प्राणों और मातापिता से भी अधिक प्रिय हैं, अपवित्र आक्रमण करते हैं। अल्लाह हमें इस्लाम पर मृत्यु दे, हम ऐसा काम नहीं चाहते जिस से 'ईमान' को क्षति पहुँचे।

**इस्लाम पर अनुचित आक्रमण**

मैं इस समय किसी जाति विशेष या धर्मसमाज विशेष पर अनुचित आरोप नहीं लगाना चाहता, और न किसी का दिल दुखाना चाहता हूँ, परन्तु मुझे बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि 'इस्लाम' ही वह एकमात्र धर्म था जिस ने कभी किसी जाति या समाज के धर्मप्रवर्तक पर हमला नहीं किया। इसी प्रकार 'कुर्आन' ही वह एकमात्र ग्रन्थ है जिस ने संसार के छिन्नभिन्न एवं परस्परविरोधी वर्गों और समाजों के बीच शांति और एकता की सुखद नींव रख दी –– वह इस तरह कि उसने प्रत्येक जाति या राष्ट्र के पैग़म्बर–अवतार को सिद्धांततः सच्चा तसलीम कर लिया। समस्त धर्म ग्रन्थों में यह गौरव सिर्फ़ कुर्आन शरीफ़ को ही प्राप्त है कि उस ने संसार के सभी पैग़म्बरों और अवतारों के संबंध में यह घोषणा की :

لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ وَ نَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ

" हे मुसलमानो ! कहो कि हम संसार के सभी (पूर्ववर्ती) पैग़म्बरों और अवतारों पर विश्वास लाते हैं, और हम उनके बीच कोई अन्तर नहीं करते –– अर्थात् बाज़ को मान लें और बाज़ को अस्वीकार कर दें।"

(कुर्आन २ : १३६)

यदि संसार का कोई और धर्मग्रन्थ भी इस तरह की उदार एवं शांतिमय शिक्षा देता हो तो उसका नाम बनाओ। कुआन शरीफ़ ने अल्लाह की ***'रहमते आमह'*** (सर्वसाधारण एवं विश्वव्यापी दयालुता) को कभी किसी जाति या वंश विशेष तक सीमित नहीं रखा। इस्राइल जाति के जितने नबी थे, जैसे हज़रत इस्हाक़, हज़रत मूसा, हज़रत दाऊद या हज़रत ईसा मसीह

(अल्लाह इन सब पर शांति वर्षित करे !) -- सब को सत्यपुरुष मान लिया। और जातियों और राष्ट्रों के पैग़म्बरों और अवतारों में से भी किसी को झूठा या पाखंडी न कहा --- चाहे उन का प्रादुर्भाव भारत में हुआ, फ़ारस (ईरान) में हुआ, या किसी अन्य भूभाग में हुआ। कुर्आन शरीफ़ की साफ़ घोषणा है, कि : إِنْ مِنْ أُمَّةٍ إِلَّا خَلَا فِيهَا نَذِيرٌ

"संसार की कोई जाति, कोई राष्ट्र ऐसा नहीं कि जिस में अल्लाह का भेजा हुआ पैग़म्बर या अवतार न आया हो।"(१० : ४७)

इस दिव्य वाक्य ने मानो अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सद्भाव की मंगलमय नींव डाल दी। कितने खेद और दुःख की बात है कि संसार की प्रत्येक जाति और समाज ने विश्वशांति के इस संस्थापक दूत को ही गालियाँ दीं और घोर अनादर किया।

**गंभीर चेतावनी**

प्रिय देशवासियो ! मैं ने यह सब तुम्हारा दिल दुखाने या तुम्हारी भावनाओं को आघात पहुँचाने के लिए नहीं कहा। मैं पूरी ईमानदारी के साथ निवेदन करना चाहता हूँ कि जिन्हें दूसरी क़ौमों और राष्ट्रों के पैग़म्बरों–अवतारों को लांछित करने या उन्हें बुरा भला कहने की आदत हो गई है -- मानो यह घृणित व्यवहार उनके धर्म का अभिन्न अंग हो, ये लोग इस दुराचार और निराधार एवं अमर्यादित आक्रमण के कारण परमात्मा की दृष्टि में पापी हैं, बल्कि मानवसमाज के बीच नफ़रत और वैरविरोध का बीज बोने के घोर अपराधी भी। दिल पर हाथ खिकर बताईए, अगर कोई आदमी किसी के पिताश्री को गाली दे या उसकी माताश्री पर झुठा लांछन लगाए, क्या वह वास्तव में स्वयं अपने ही माता – पिता के मानसम्मान पर आक्रमण नहीं करता ? क्योंकि अगर वह व्यक्ति भी, कि जिसके मातापिता को बुराभला कहा गया, जवाब में अपशब्द कह दे, तो क्या हम उस व्यक्ति को अपने मातापिता की मानमर्यादा का शत्रु नहीं ठहराएं गे, जिस ने गाली गलोच या अपशब्द कहने में पहल की हो ? देखिये कुर्आन शरीफ़ ने औरों की मानमर्यादा की रक्षा पर कितना बल दिया है, फ़रमाया है :

لَا تَسُبُّوا الَّذِينَ يَدْعُونَ مِنْ دُونِ اللَّهِ فَيَسُبُّوا اللَّهَ عَدْوًا بِغَيْرِ عِلْمٍ

"और तुम इन बहुदेववादियों की देवप्रतिमाओं को भी गाली मत दो, जिन्हें ये अल्लाह के सिवा पुकारते हैं, कहीं ऐसा न हो कि वे मर्यादा भंग कर,अज्ञानवश, अल्लाह को ही गाली देदें।"(6 : 108)

अब देखिए, मूर्ति पूजा को निर्थक और निराधार बताने के बावजूद, मुसलमानों को यही सीख दी कि तुम मूर्तियों को बुराभला न कहो। हाँ ! शिष्टाचार में रहते नर्मी से अवश्य समझाओ, कहीं ऐसा न हो कि वे आवेश में आकर 'ईश्वर' को ही गालियाँ देने लगें। और इन गालियों के ज़िम्मेदार तुम ठहरो। इसके विपरीत तनिक उन लोगों की नैतिक दशा निहारो, जो इस्लाम और उसके महान *पैग़म्बर* (सल्ल.) को गालियां देते हैं, और अशोभनीय लांछन लगाते हैं। और आपके पवित्र चरित्र, आपकी इज़्ज़त पर पाशविक हमले करते हैं। वह महानतम *'नबी'* कि जिसका शुभनाम सुनते ही इस्लाम के श्रीसम्पन्न सम्राट सम्मान हेतु सिंहासन से नीचे उतर आते हैं, और आपके आदेशों के आगे शीश झुकाते हैं, और स्वयं को आपके तुच्छ सेवकों में गिनते हैं। क्या यह अद्‌भुत प्रतिष्ठा ईश्वरप्रदत्त नहीं ? और ईश्वर द्वारा प्रतिष्ठित पुण्यात्मा का अपमान वही लोग करते हैं जो परमात्मा से लड़ना चाहते हैं। *हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद* (सल्ल.) अल्लाह के वह गौरान्वित पैग़म्बर हैं जिन की प्रतिष्ठा एवं समर्थन हेतु अल्लाह ने अनेकों अनेक चमत्कार और दिव्य चिन्ह प्रदर्शित किए। क्या यह प्रभु के करकमलों का प्रताप नहीं कि आज बीस करोड़ मुसलमान इस पैग़म्बर की चौखट पर अपना शीश झुकाते हैं।[1] इस में संदेह नहीं कि प्रत्येक पैग़म्बर अपने साथ अपनी सत्यता के कुछ प्रमाण रखता था, लेकिन जितने दिव्य प्रमाण और सबूत हज़रत पैग़बरश्री (सल्ल.) के पक्ष में प्रदर्शित हुए हैं, और अब तक बराबर हो रहे हैं, उन की बराबरी कोई दूसरा रसूल, पैग़म्बर या अवतार नहीं कर सकता।

## *विश्वव्यापी अँधकार में हज़रत पैगम्बरश्री का प्रदीपक उदय*

जब धरती पाप और कुकर्मों से भ्रष्ट होजाती है, अधर्म और अत्याचार बढ़ जाता है, पाप और दुष्कर्म पुण्य और सुकर्मों पर हावी हो जाता है, तब ईश्वर की दयालुता यही चाहती है कि ऐसी विकट परिस्थिति में किसी पुण्यात्मा को धरती के सुधार एवं पथप्रदर्शन हेतु भेज दिया जाए। ठीक वैसे ही जैसे बीमारी वैद्य या डॉकटर की याचना करती है। इस दृष्टिकोण को

1.यह सन् 1908 ई. की जनसंख्या है, जब यह लेख लिखा गया।

हमारे हिन्दू भाई खुब समझ सकते हैं, क्योंकि उन की यही मान्यता है कि वेदों का आविर्भाव उस समय नहीं हुआ जब संसार में पाप की बाढ़ आई हुई थी, बल्कि उस समय हुआ जब संसार में कोई पाप न था। तो क्या आप इस युक्ति को बुद्धिसम्मत नहीं मानते कि किसी ***'नबी' या अवतार*** का अवतरण उस समय भी हो जब पाप का भयंकर सैलाब अपनी तीव्र गति से दुनिया के प्रत्येक भूभाग में प्रवाहित हो रहा हो ? मैं नहीं समझता कि आप उन ऐतिहासिक परिस्थितियों से अपरिचित होंगे जिनके मध्य हमारे पैगंम्बरश्री (सल्ल.) ***'नबूवत'*** के दिव्य सिंहासन पर आसीन हुए थे। वह एक ऐसा अँधकारमय दौर था जब पृथ्वी का कोई भी भाग पाप और दुष्कर्मों से खाली न था। इस ऐतिहासिक तथ्य को आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती[१] ने भी अपनी पुस्तक ***'सत्यार्थ प्रकाश'***[२] में स्वीकारा है। वे लिखते हैं कि उस समय आर्यवर्त्त में भी ईश्वर उपासना का स्थान मूर्तिपूजा ने लेलिया था, और वैदिक धर्म में भी काफी विकार उत्पन्न हो चुका था। यही बात सुविख्यात यूरोपियन मिशनरी रेवरेण्ड सी. जी. फेण्डर ( Rev. C. G. Pfender ) ने अपनी पुस्तक ***'मीज़ान अल्-हक़'*** में लिखी है —— कि हज़रत पैग़म्बरश्री (सल्ल.) के काल में ईसाई लोग सर्वाधिक भ्रष्ट और पतित हो चुके थे। उनकी अनैतिकता और उनके अनाचार के कारण ईसाई धर्म कलंकित हो रहा था। कुर्आन शरीफ़ स्वयं अपने अवतरण की आवश्यकता को इन शब्दों में अभिव्यक्त करता है :

ظَهَرَ الْفَسَادُ فِى الْبَرِّ وَ الْبَحْرِ

"थल और जल —— दोनों ही बिगड़ चुके थे।"(३० : ४१)

१. मृ. १८८३ ई.।

२.***'सत्यार्थ प्रकाश'*** सर्वप्रथम सन् १८८२ ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का १४वां अध्याय इस्लाम के बारे में है। स्वामी जी की भाषा अति अभद्र और कठोर है। इस पुस्तक के प्रकाशन उपरांत भारत के बुहत सारे प्रांतों में इसके विरुद्ध तीव्र रोष की प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हुई, जिस के उपलक्ष्य में तत्कालीन सरकार ने इस पुस्तक पर पाबंधी भी लगा दी थी। इस्लाम और कुर्आन शरीफ़ पर लगाये हुए स्वामी जी के एतराज़ एकदम सतही किसम के हैं। इनका युक्तियुक्त जवाब ***हज़रत मौलाना अब्दुल हक़ विद्यार्थी*** की सुविख्यात उर्दू कृति ***'आईना हक़नुमा'*** ( सत्यदर्पण ) में है। (अनुवादक)

अभिप्राय यह कि सभी राष्ट्र और सभी जातियां, चाहे वे असभ्य हों या स्वयं को बुद्धिमान समझने वाली —— सब की सब विकृतियों में डूब चुकी थीं।

सभी साक्षियों से यही साबित होता है कि हज़रत पैग़म्बरश्री (सल्ल.) के काल में संपूर्ण मानव जाति, चाहे उसका संबंध पूर्व से था या पश्चिम से, आर्यवर्त्त से था या अरब के रेगिस्तानों से, या फिर द्वीपों में रहने वालों से —— सब के सब पथभ्रष्ट हो चुके थे, और ईश्वर से नाता तौड़ चुके थे। पापों और दुष्कर्मों ने धरती को अपवित्र कर दिया था। क्या विवेकी पुरुषों को साफ़ नज़र नहीं आता कि ऐसी विकट परिस्थितियों और ऐसे अँधकारमय युग में एक अति महान पैग़म्बर या अवतार का शुभागमन बुद्धिसंगत ही नहीं अवश्यम्भावी भी था ?

**हज़रत पैग़म्बरश्री का सुधार-कार्य**

अब प्रश्न यह रह जाता है कि हज़रत पैग़म्बरश्री (सल्ल.) ने संसार में प्रकट होकर क्या क्या सुधार कार्य किए ? इसका जितना सीधा और सरल उत्तर अपने नबी के प्रसंग में एक मुसलमान दे सकता है, कोई ईसाई, कोई यहूदी या कोई आर्य अपने नबी या अवतार के विषय में नहीं देसकता। हज़रत पैग़म्बरश्री (सल्ल.) के मिशन का प्रथम लक्ष्य अरब देश का सुधार था। उस समय अरब वासी इतने पतित और गुमराह होचुके थे, कि उनको मनुष्य कहना दुष्कर था।कौन सी बुराई थी जो उन में न पाई जाती थी ? मूर्तिपूजा का वह कौनसा प्रकार था जिसका चलन उन के यहां न था ? चोरी करना और डाके मारना उन का धन्दा था। निरपराध मनुष्यों की हत्या कर देना इतना ही मामूली काम था कि मानो किसी ने पेर तले चूँटी मसल दी हो। अनाथ बालकों को क़त्ल कर उनकी संपति हड़प जाते थे। लड़कियों को ज़िन्दा दफना देते थे। व्यभिचार गर्व का विषय था, कवि लोग अपनी कविताओं में इन अश्लील बातों का खुलमखुला वर्णन करते थे। मद्यपान का इतना अधिक चलन था कि कोई भी घर इस व्यसन से खाली न था। जुएबाज़ी और द्यूतक्रीड़ा के मामले में तो वे सभी राष्ट्रों और जातियों बढ़े हुए थे। विषैले सर्पों और हिंसक पशुओं से भी इतने गए गुज़रे थे, की उन्हें पशु कहना भी पशु–जाति का अपमान था।

परन्तु जब हमारे 'नबी' सल्ल. उनके उद्धार केलिए खड़े हुए, और

अपने दिव्य–प्रभाव से उनका शोधन आरंभ किया, तो कुछ ही दिनों में ऐसी कायाकल्प होगई कि वे सब दानव से मानव होगए, और फिर मानव से सुसभ्य मनुष्य, और सुसभ्य मनुष्य से ईश्वरपरायण मनुष्य बन गए। और अन्ततः प्रभुप्रेम में ऐसे लीन हो गए कि उन्हीं ने एक निस्तब्ध अंग के समान प्रत्येक दुःख और पीड़ा को चुपचाप सहन किया। उन्हें हर प्रकार की यातना दी गयी, बेदर्दी से कोड़े बरसाये गए, तपती रेत पर घसीटा गया, कारागृह में बन्दी बना कर भूखा प्यासा रखा गया कि तड़प तड़प कर मरणासन तक पहुँच जाएं। किन्तु उन्हों ने सारे कष्ट अडिग विश्वास से झेले, और अपना कदम निरंतर आगे बढ़ाते चले गए। अनेकों के बच्चों को स्वयं उन की आँखों के सामने वध कर दिया गया, अनेकों को उनके बच्चों के सामने सूली पर चढ़ा दिया गया। जिस निष्ठा और वीरता से उन्हों ने प्रभु के मार्ग में अपने प्राण बलिदान किये उस की कल्पना मात्र से आँखों से आँसों प्रवाहित हो जाते हैं। यदि यह सब उस ईश्वरीय प्रभाव का चमत्कार न था जिसने उनके दिलों पर असर किया हुआ था, तथा हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. की उस अद्भुत शोधन शक्ति का प्रताप न था तो और क्या था ? आख़िर वह कौन सी बात थी जिस ने उनको इस्लाम की और इतना आकर्षित किया हुआ था, और उनके भीतर एक अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न कर दिया कि वे उसी व्यक्ति के चरणों में आ गिरे जो कभी मक्का की गलियों में एक उपेक्षित, असहाय और एकाकी व्यक्ति के रूप में फिरता था। कोइ आध्यात्मिक शक्ति तो अवश्य रही होगी कि जिस ने उन्हें पतन की गहराइयों से उठा गरिमा के आकाश तक पहुँचा दिया।

आश्चर्य की बात तो यह है कि इस्लाम ग्रहण करने से पहले उन में के अधिकतर लोग हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. के जानी दुश्मन और आपके खून के प्यासे थे। मेरे विचार में इससे बढ़कर और कोई चमत्कार नहीं, कि एक निर्धन, बेसहारा और अकेले व्यक्ति ने उनके दिलों को पूर्णतः स्वच्छ कर अपनी ओर खींच लिया, यहांतक कि वे संसारिक ठाठबाठ तज कर और टाट पहनकर विनम्र सेवकों की भांति उनकी सेवा में उपस्थित होगए।

**_'जिहाद'_ यानि ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने का आरोप**

कुछ नासमझ लोग इस्लाम पर *'जिहाद'* का आरोप लगाते हैं, और

कहते हैं कि ये सब लोग तलवार के बल पर ज़बरदस्ती मुसलमान बनाएगए।

अफसोस ! हज़ार अफसोस ! कि इन लोगों ने अन्याय और ग़लतबयानी की सारी सीमाएं लांघ लीं। इन्हें क्या हो गया कि वे जान बूझ कर सही तथ्यों से मुँह फेर लेते हैं। हमारे प्यारे नबी सल्ल. का आविर्भाव अरब–सम्राट के रूप में नहीं हुआ, कि यह कहा जासकता कि चूंकि उनके पास राजसत्ता और शक्ति थी इस लिये लोग प्राण बचाने केलिए उनके झंड़े तले जमा हो गए थे।

असल प्रश्न तो यह है कि जब हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. ने अल्लाह की ***'तौहीद'*** (एकत्व) और अपनी ***'नबूवत'*** का अहवान शुरू किया, उस वक्त आपके पास कौनसी तलवार थी, कि जिस से डरा धमका कर आप लोगों को अपना अनुयायी बनने पर मजबूर करते थे, और यदि वे उन के धर्म–मत को स्वीकार न करते, तो आप किस राजा की सेनाओ को बुलाते जो लोगों को ज़बरदस्ती उनका धर्म कबूल करने पर विवश कर देतीं ?

हे सत्य के जिज्ञासुओ ! ये सब इस्लाम के कट्टर दुश्मनों के लागाये हुए मनगढ़ंत आरोप हैं। तनिक इतिहास उठा कर देखो, हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. वही अनाथ बालक थे जिन के पिताश्री का देहांत उनके जन्म के कुछ ही दिन पहले हुआ था, और जिनकी माताश्री उस समय परलोक सिधार गई थीं जब अभी आप केवल कुछ ही महीनों के थे।

यही असहाय और निराश्रित बालक केवल परमात्मा के सहारे पलता और बढ़ता रहा। अपने अनाथ काल में उस ने बाज़ लोगों की बकरियां भी चराईं। परमात्मा के सिवा उसका कोई सहायक न था। पच्चीस वर्ष की आयु तक पहुंचकर भी किसी चाचा ने अपनी बेटी का विवाह उस से न किया। कारण, उसके पास घर–परिवार चलाने केलिए धन और साधन न थे। उसको शिक्षा प्राप्त करने का भी अवसर न मिला था, और न ही उसके पास कोई और हुनर या धन्दा था।

जब आप चालीस की आयु का पहुंचे तो एकाएक आप का मन परमात्मा की ओर आकर्षित होगया। मक्का नगर से कुछेक मील की दूरी पर ***'हिरा'*** नामक एक गुफा थी, आप अकेले वहां जाते, और कई कई दिन

एकांत में अपने प्रभु का स्मरण करते। एक दिन इसी गुफा में, जब वे रोज़ की भांति उपासना में लीन थे, प्रभु ने आपको दर्शन दिये, और आपको आदेश मिला : संसार ने प्रभु का मार्ग छोड़ दिया है, और धरती पाप से भर चकी है, इस लिए मैं तुझे अपना ***'रसूल'*** नियुक्त करता हूँ। अतः अब तू लोगों को सचेत कर कि वे ईश्वरीय प्रकोप उतरने से पहले परमात्मा की ओर पलट आयें। इस आदेश को सुनते ही आप भयभीत होगए, और निवेदन किया कि मैं एक अनपढ़, अशिक्षित इन्सान हूँ। तब परमात्मा ने आपके मनमस्तिष्क को आध्यात्मिक ज्ञानप्रज्ञान से भर दिया। और आपके संपूर्ण व्यक्तित्व को अपनी दिव्य ज्योति से प्रकाशित कर दिया।

**प्रारंभकालीन मुसलमानों पर अत्याचार**

आपके दिव्य प्रताप और आध्यात्मिक शक्तियों ने पहले पहले दीनहीन जनों को आकर्षित किया, और वे सचे मन से आपके अनुयायी बनने लगे। अरब देश के बड़े बड़े सामन्तों ने इसका कड़ा विरोध शुरू किया, आपकी हत्या तक की योजानाएं बनाई गई। अनेक मुसलमान पुरुष और स्त्रियां अत्यन्त निर्दयता से मौत के घाट उतार दी गयीं। और अन्तिम हमला यह किया गया कि हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. का वध करने केलिए आपके घर का घेराव किया गया। किन्तु —— ***जाको राखे साईयां मार सके न कोय !*** अल्लाह ने आपको अपनी ***'वह्य'*** द्वारा सूचित किया कि आप इस नगर से निकल जाएं, मैं हर क़दम पर आपके साथ रहूँगा।

अतएव आप अपने परम मित्र हज़रत अबू बक्र (रज़.) को साथ लेकर मक्का नगर से निकल आये, और तीन रात तक ***'सौर'*** नामक गुफा में छिपे रहे। शत्रु ने पीछा किया, और एक खोजी की सहायता से गुफा तक पहुंच गया। खोजी ने पदचिन्हों के सहारे उन्हें गुफा के द्वार तक पहुँचा दिया, और कहा कि इस गुफा में तलाश करो, क्योंकि पदचिन्ह इस से आगे नहीं जाते। यदि यहाँ नहीं तो फिर आकाश को चले गए होंगे। लेकिन परमात्मा के चमत्कारों की कोई सीमा नहीं। एक ही रात में मकड़ी ने जाल बुन कर गुफा का मुँह बन्द कर दिया, और एक कबूतरी ने गुफा के मुँह पर घोंसला बनाकर अण्डे देदिये। फलतः जब खोजी ने शत्रु को गुफा के भीतर जाने ही सलाह दी, तो एक बूढ़ा आदमी बोला : यह खोजी पागल है, मैं मकड़ी

के इस जाले को उस ज़माना से देख रहा हूँ जबकि मुहम्मद (सल्ल.) अभी पैदा भी नहीं हुआ था। इस बात को सुनकर सब लोग इधर उधर बिखर गए, और उन्हों ने गुफा के भीतर खोजने का विचार ही छोड़ दिया।

वहाँ से आप गुप्त रूप से मदीना पहुँचे, जहाँ की अधिकांश जनता ने आपको पैग़म्बर के रूप में स्वीकार कर लिया। इस से मक्का वाले और ज़्यादा भड़क उठे, उन्हें पहले ही इस बात पर क्रोध था कि उनका 'शिकार' उनके हाथ से निकल गया। फिर क्या था, वे दिनरात ऐसी योजनाएं बनाने में जुट गए कि किस तरह हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. को मदीना में ही विनष्ट कर दिया जाए। मक्का में हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. के अनुयायिओं का जो छोटा सा दल था वह पहले ही अपनी मातृभूमि का परित्याग कर अन्य निकटवर्ती देशों की ओर ***'हिज्रत'*** कर चुका था। कुछेक ने हब्शा (Abyssinia) के सम्राट की शरण ली थी, और कुछ मक्का ही में रह गए, क्योंकि उनके पास यात्रा के साधन न थे। मक्का वालों ने उन्हें घोर कष्ट दिये। उनके विलाप और क्रन्दन का उल्लेख कुर्आन शरीफ़ में है, कि किस प्रकार वे दिनरात ईश्वर से मुक्ति की प्रार्थना करते थे। जब मक्का वालों का अत्याचार सारी सीमाएं लांघ गया, तो उन्हों ने अबलाओं और अनाथ बच्चों का वध शुरू कर दिया। कुछ स्त्रियों की हत्या अत्यन्त निर्मम तरीके से की गई — उनकी दोनों टांगें दो ऊँटों की टांगों के साथ बांध दी गई, और फिर उन ऊँटों को विपरीत दिशाओं में दौड़ाया गया, और इस प्रकार वे निरपराध अबलाएं दो भागों में चिर कर मृत्यु को प्राप्त हुयीं।

जब निर्दयी काफिरों के अत्याचार इस सीमा तक पहुँच गए, तो दयालु परमात्मा ने, जो अपने भक्तों की विनति सुनता है, अपने *'रसूल'* को ***'वह्य'*** द्वारा सूचित किया : मैं ने अत्याचार से पीड़ित भक्तों की प्रार्थना सुन ली है, अतः अब मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ कि तुम भी उनका मुक़ाबला करो, पर इतना याद रखना कि जो लोग निरपराध लोगों पर तलवार उठाते हैं वे तलवार से ही वध किये जाएं गए। ध्यान रहे कि तुम्हारी ओर से कभी कोई ज़्यादती न हो, क्योंकि अल्लाह ज़्यादती करने वालों को पसन्द नहीं करता।

**तलवार या अध्यात्म**

यह है इस्लामी *जिहाद* की असल वास्तविकता, जिसे एक अत्यन्त

विकराल रूप में पेश किया जाता है। निस्संदेह परमात्मा अति सहनशील है, लेकिन जब किसी राष्ट्र या जाति के अत्याचार अपनी चरमसीमा लांघ जाते हैं, तो वह न्यायशील परमात्मा अत्याचारियों को दण्डित किये बिना नहीं छोड़ता, वह स्वयं उनके विनाश का उपाय कर देता है। मैं नहीं जानता कि हमारे विरोधियों ने कहाँ से और किस से सुन लिया है कि इस्लाम तलवार के बल से फैला है। जबकि क़ुर्आन शरीफ़ में अल्लाह का स्पष्ट आदेश यह है :

لَا إِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ

"धर्म के मामले में कोई ज़ोर–ज़बरदस्ती जाइज़ नहीं।"(२ : २५६) तो फिर ज़ोर–ज़बरदस्ती का आदेश किस ने दिया ? मुसलमानों के पास बल प्रयोग के साधन ही कहाँ थे, कि जिस के आधार पर कहा जासकता कि लोगों को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया ? क्या ज़ोर–ज़बरदस्ती करने से वह अद्भुत श्रद्धा और अडिग निष्ठा पैदा की जासकती है, जिसका अपूर्व प्रदर्शन हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. के अनुयायिओं ने किया, कि बिना किसी वेतन या मुआवज़े के दो–तीन सौ आदमी हज़ारों के साथ भिड़ गए, और जब उनकी संख्या हज़ार तक पहुँची तो लाखों शत्रुओं को पराजित कर दिया। इस्लाम को दुश्मन के हमले से बचाने केलिए उन्हों ने भेड बकरियों की भांति अपने सिर कटवा दिये, और इस्लाम की सत्यता पर अपने खून की मोहर लगा दी।

***'तौहीद'*** यानि एकेश्वरवाद का सन्देश फैलांने केलिए उनके मन में एक तीव्र रुचि और असाधारण आसक्ति थी, जिस के अन्तर्गत वे साधु सन्तों की भांति नाना प्रकार के कष्ट सहते हुए अफ़रीका के तप्ते रेगिस्तानों तक जा पुँचे, और उन तक इस्लाम का मंगलमय संदेश पुँचा दिया। अनेक कठिनाइयां सहन करके चीन तक जा पुँचे –– यौद्धा बनकर नहीं बल्कि धर्मप्रचारक साधु या दरवेश बनकर, ताकि उनको भी इस्लाम का पैग़ाम सुना दें। उनके इस शंतिमय धर्मप्रचार का परिणाम यह हुआ कि करोड़ों जन मुसलमान हो गए। साधु–वृत्ति वाले यह धर्मप्रचारक आर्यवर्त्त भी पहुँचे कि उन्हें भी इस्लाम का जीवनदायक संदेश सुनाएं। उन्हों ने ***ला इलाह इल्लल्लाह*** ('अल्लाह के सिवा कोई और इश्वर नहीं') की मधुर धवनि को यूरोप की सीमाओं तक गूंजा दिया।

अब सचसच कहो कि क्या ये उन लोगों के कार्य होसकते हैं, जिन्हों ने ज़बरदस्ती तलवार की नोक पर इस्लाम क़बूल किया हो ? या उन लोगों के कार्य जो ज़ुबान से मुसलमान और दिल से ग़ैरमुस्लिम थे ? नहीं, ये अवश्य उन्हीं लोगों के कार्य थे जिन के दिल इस्लाम के प्रकाश से परिपूर्ण थे, और जो प्रभु के प्रेम को सर्वाधिक महत्त्व देते थे।

**पूर्ववर्ती धर्म देशगत या जातिगत थे**

अब हम पुनः उसी प्रश्न की ओर पलटते हैं, अर्थात् इस्लाम की शिक्षा क्या है ? ज्ञात रहे कि इस्लाम का मुख्य उद्देश्य यही है कि संसार में प्रभु के ***'एकत्व'*** और उसकी महिमा की स्थापना हो जाये। अनेकेश्वरवाद, बहुदेववाद, और मूर्तिपूजा का समूल उन्मूलन करके समस्त राष्ट्रों, जातियों और धर्मसमुदायों को एक ***'कलमा'*** (मूलविश्वास) पर एकत्रित कर दिया जाए। समस्त पूर्ववर्ती धर्मों और पैग़म्बर–अवतारों के कार्य का दायरा केवल एक ही जाति या राष्ट्र तक ही सीमित था। अतः उन्हों ने शिष्टाचार या सिद्धांत के रूप में जो कुछ प्रतिपादित किया वह अपने देश और काल तक ही सीमित था। उदाहरण केलिए, हज़रत ईसा (अ.स.) ने साफ शब्दों में बता दिया कि उनका मिशन केवल इस्राईल जाति तक सीमित है : चुनांचि जबएक ग़ैरइस्राईली स्त्री ने उन से सविनय निवेदन किया, 'हे प्रभु, मुझ पर दया कीजिए', तो हज़रत ईसा ने कहा :

"मैं इस्राएल वंश की खोई हुई भेड़ों को छोड़कर अन्य किसी के लिए नहीं भेजा गया।"(मत्ती १५ : २४)

और जब उस औरत ने पुनः निवेदन किया, प्रभु मेरी सहायता कीजिए, तो हज़रत ईसा ने फ़रमाया :

"बालकों की रोटी लेकर कुत्तों के आगे डालना ठीक नहीं।"

(मत्ती १५ : २६)

इसके विपरीत हज़रत पैग़म्बरश्री सल्ल. ने यह कभी न कहा कि मैं सिर्फ़ अरबों के लिए आया हूँ। बल्कि कुर्आन शरीफ स्वयं फ़रमाता है :

قُلْ يَاأَيُّهَا النَّاسُ إِنِّي رَسُولُ اللَّهِ إِلَيْكُمْ جَمِيعًا

"हे मुहम्मद ! संपूर्ण मानवजाति के सम्मुख यह घोषणा कर दे : मैं तुम

सब की ओर अल्लाह का 'रसूल' बनकर आया हूँ।"(७ : १५८)
स्मरण रहे कि हज़रत ईसा (अ.स.) के उक्त कठोर उत्तर में उनका कोई दोष न था। क्योंकि वह युग अभी सार्वभौम शिक्षण के लिये अनुकूल न था। हज़रत ईसा को परमेश्वर की ओर से यही आदेश था कि तुम्हारा मिशन केवल इस्राईल जाति तक सीमित है, अन्य लोगों के साथ इसका कोई संबंध नहीं। जैसा कि मैं कह चुका हूँ कि हज़रत ईसा की नैतिक शिक्षा भी यहूदियों तक ही सीमित थी। तौरात में विहित नियमों के अनुसार दांत का बदला दांत, आँख का बदला आँख और नाक का बदला नाक था। इस नियम का मात्र उद्देश्य यहूदियों में न्याय की स्थापना और उन्हें अन्याय और ज़्यादती से रोकना था। क्योंकि चार सौ वर्ष की गुलामी के कारण इस्राईली लोगों के स्वभाव में अनीति और लोलुपता का समावेश हो गया था। इसी कुप्रवृत्ति के सुधार हेतु प्रभु ने उन्हें ये नियम प्रदान किये। हज़रत ईसा के काल में प्रभु की बुद्धिमत्ता ने यही चाहा कि उनके भीतर सहिष्णुता और क्षमाभाव को उत्पन्न किया जाए, क्योंकि उस वक़्त यहूदियों में इन पावन भावनाओं का लोप हो चुका था। फल यह कि Gospel में वर्णित नैतिक शिक्षा केवल यहूदियों तक सीमित है, संसार की अन्य जातियों का हज़रत ईसा से कोई संबंध नहीं।

सच तो यह है कि हज़रत ईसा की नैतिक शिक्षा स्वयं में अधूरी है, केवल इस लिए नहीं कि इस में सार्वभौम समवेदना या अनुकंपा नहीं, बल्कि इस लिए भी कि जिस तरह तौरात बदले और प्रतिशोध की भावना को उसकी चरमसीमा तक ले जाती है, उसी तरह Gospel क्षमा और माफी की भावना को अशर्त चरमसीमा तक ले जाता है। इन दोनों ग्रन्थों ने मानवसमाज रूपी वृक्ष की समस्त शाखाओं को दृष्टि में न रखा, वरन् इस वृक्ष की केवल एक शाखा को तो तौरात पोषित करती है, जबकि इंजील (Gospel) के हाथ में दूसरी शाखा है। दोनों ग्रन्थों की शिक्षाएं संतुलन और माध्यमिकता से रिक्त हैं। क्योंकि जिस तरह हर एक मामले में बदला लेना या सज़ा देना न्याय नहीं, उसी तरह इर मामले में क्षमा और माफ़ी से काम लेना भी बुद्धिमत्ता नहीं। इसी लिए कुर्आन शरीफ़ ने इन अपूर्ण शिक्षाओं को रद्द करके यह फ़रमाया :

وَجَزَٰٓؤُا۟ سَيِّئَةٍ سَيِّئَةٌ مِّثْلُهَا فَمَنْ عَفَا وَأَصْلَحَ فَأَجْرُهُۥ عَلَى ٱللَّهِ

"बुराई का बदला उसके अनुरूप सज़ा है, फिर जो कोई क्षमा करे और सुधार करे तो उसका प्रतिफल अल्लाह के ज़िम्मा है।"(४२ : ४०) मतलब यह कि बुराई की सज़ा बूराई की गम्भीरता के अनुरूप हो, जैसा कि हज़रत मूसा (अ.स.) का नियम कहता है, परन्तु Gospel द्वारा विहित क्षमा का विधान उसी सूरत में लागू होगा जब इस से कोई उत्पादी लाभ होता हो, या जब उद्देश्य अपराधी का सुधार हो। अन्यथा मूल विधान तो वही है जो तौरात में विहित है।

समाप्त

********

## दो शब्द अपने बारे में ---

अपने दावे के संबंध में बस इतना बता देना ज़रूरी समझता हूँ कि मैं अपनी मर्ज़ी से नही, बल्कि प्रभु के भेजने से आया हूँ। मेरा काम उन भ्रांतियों और आरोपों का खंडन है जो इस्लाम पर लगाये जाते हैं, मेरी नियुक्ति इस युग की जटिल समस्याओं के निवारण हेतु भी हुई है। मेरा काम इस्लाम के प्रकाश को दूसरी जातियों और राष्ट्रों के सामने लाना है। इस्लाम की जो छवि हमारे विरोधीजन प्रस्तुत करते हैं वह एकदम असत्य और निराधार है। इस्लाम तो वह चमकता हीरा है कि जिसका हर कोना कांतिमान है। उस विशाल महल की भांति कि जिस में अनेकों दिये चमक रहे हों, अतः कोई दीप किसी झरोखे से नज़र आरहा हो, और कोई किसी कोने से। यही हाल इस्लाम का है, इस का दिव्य प्रकाश सिर्फ एक ही ओर से दृष्टिगोचर नहीं होता, इसके कांतिमान दीप हर दिशा से प्रकाश बिखेर रहे हैं। इस की शिक्षा स्वयं में एक आसमानी चिराग़ है, और फिर इसके साथ ईश्वरीय सहायता के जो अलौकिक चिन्ह नज़र आते हैं, उन मेंका प्रत्येक चिन्ह भी अपनी जगह एक चिराग़ है। और जिस युगपुरुष को इसकी सहायता का परमशुभ कार्यभार सौंपा जाता है, वह भी प्रभु का एक दीप ही होता है। मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा भाग विभिन्न धर्मों के दिव्य ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत हुआ है। मैं सचसच कहता हूँ कि किसी अन्य धर्म की शिक्षा, चाहे उसका संबंध सिद्धांतों से हो, नैतिकता से हो, राजनीति से हो, घरेलू जीवन से हो या पुण्यकर्मों के विभाजन से, हम उसको कुर्आनविहित शिक्षाओं के तुल्य नहीं पाते। मेरा यह कथन इस लिए नहीं कि में एक मुसलमान हूँ , बल्कि सचाई मुझे विवश करती है कि में गवाही दूँ। और मेरी यह गवाही असमय नहीं, बल्कि ऐसे वक्त में दी जा रही है जब संसार में धर्मों का एक मल्लयुद्ध आरंभ होचका है। मुझे प्रभु ने यह पूवसूचना दी है कि इस कुश्ती में अन्ततः विजय इस्लाम को ही प्राप्त होगी। मैं ज़मीन की बातें नहीं कहता क्योंकि मैं ज़मीन से नहीं हूँ। मैं वही कहता हूँ जो ईश्वर ने मेरे मुँह में डाला है ..... आसमान के खुदा ने मुझे बताया है ***कि अन्ततः इस्लाम धर्म ही दिलों को जीत लेगा***। (हज़रत मिर्ज़ा साहिब)

# इन्डेक्स (अनुक्रमणिका)


**अबू बक्र** २६

**अरब लोग,**
हज़रत पैग़म्बरश्री के शुभ आगमन के समय उनकी दशा २५

**अल्लाह**,उसके
समस्त वरदान सार्वभौम १,४
वरदान जातिविशेष नहीं १०,१४

**अवतार** ७

**अहमदिय्या आंदोलन** १८

**आर्य समाज** ४,७,१०,१६,२६

**इंजील** Gospel
क्षमा के मामले में मर्यादा कायम न रख सकी ३३

**इब्रानी** ११

**इलहाम**(देखो ईश्वरीय वाणी)

**ईश्वरीय वाणी**
हर राष्ट्र इसे अपने तक ही सीमित समझता है ४,६,१०
यह दिव्य वरदान हर जाति,हर राष्ट्र को दिया गया १,४

**ईसा मसीह** १३,३२
का मिशन इस्राइल जाति तक सीमित था ३,३२

**ईसाई,** उन की दशा
हज़रत पैग़म्बरश्री के शुभ आगमन के समय २५

**इस्लाम,**
शांति का धर्म २१
मौलिक सिद्धांत २१,३०
तलवार से नहीं फैला ३०
कैसे फैला ३०

**ऋषि**,भारतीय ४,१५,१८,२०

**कृष्ण**,श्री ८

**कुर्आन,शरीफ** २,४,१७,२२,३०
सभी पैग़म्बरों,अवतारों को मानता है २२
विश्वशांति की नींव रखता है २२
देवप्रतिमाओं को बुराभला कहने से रोकता है २३
की उद्धृत आयतें २,४,१७,२२,२३,२५,३१,३२,३३

**कांग्रेस**,इंडियन नैशनल २०

**गौहत्या**,समस्या का हल २१
मुसलमान गौमांस का सेवन छोड़ दें गे २१

**जिहाद,**
का गलत आरोप २७
का सही अर्थ व स्वरूप ३०

**जैन धर्म** १६

**तौरात Torah**, प्रतिशोध की शिक्षा ३३,३४

**दयानन्द**,स्वामी २५

**नानक**,श्री गुरु, ८
इस्लाम को सच्चा मानते थे ८
का आगमन हिन्दू मुस्लिम एकता केलिए हुआ था ८

**नियोग** १६

**परमात्मा**(देखो अल्लाह)

**पारसी धर्म** ११,१३

**फेंडर**,पादरी २५

**बुद्ध**,महात्मा १२

**भाषावाद** का खंडन २७
**मक्का** २७,३०
**मदीना** ३०
**मिर्ज़ा गुलाम अहमद**,हज़रत
को इलहाम और चमत्कार
का सौभाग्य प्राप्त था ६
हिन्दुओं के साथ शांति
समझौते का प्रस्ताव १७
**मुसलमान,**
सभी पैग़म्बरों को मानते हैं १५,२२
वेदों को मानते हैं १५
हज़रत पैग़म्बरश्री के निंदक
से शांति समझौता नहीं
करसकते १५,२२
प्रारंभकालीन,पर अत्याचार २६
गैरअहमदी,भी मुसलमान हैं १६
युद्ध की आज्ञा,कब मिली ३०
**मुस्लिम लीग** २०
**मुहम्मद,हज़रत पैग़म्बरश्री**
का आगमन विश्वव्यापी
अंधकार के समय हुआ २४
की प्रभु द्वारा नियुक्ति २६
सर्वसंसार केलिए थे ३२से३३
के दुश्मन २८से ३०
मुसलमानों द्वारा अद्‌भुत
आदर व सम्मान १५,२४
हिन्दू उन्हें सच्चा मान लें २०,२१
के जीवन का आरंभ अति
दीनहीन अवस्था में हुआ २८
का सुधार कार्य २६
पर ग़ैरमुस्लिमों द्वारा
झूठे आरोप २२
**यहूदी और ईश्वाणी** १४,२६
**यहूदी और ईसाई**
ईश्वाणी को इस्राईल के घराने
तक सीमित मानते हैं ३
**वेद,** ४,७,१०से१७,२०,२५
में इन्सान द्वारा कांटछांट १७
**वह्य**(देखो ईश्वरीय वाणी)
**संस्कृत भाषा** ४,११
**सिख समुदाय** ८
**सौर गुफा** २६
**शांति**
का संदेश ५
का प्रस्ताव १७
की अत्यंत ज़रूरत ६
**हिन्दू** १५,१६,२५
**हिन्दू मुस्लिम संबंध** १५
मैत्रीपूवक हों १,५,१७
राजनीतिक पहलू १६
भावी खतरों से सचेत करना२,१५,२३
**हिब्रयु** Hebrew ११
**हिरा,गुफा** २८

---

**'पैग़ामे सुलाह'** की पाण्डुलिपि में हज़रत मिर्ज़ा साहिब के कुछ नोट (स्मरणार्थ टिप्पण) भी थे जिन्हें वे अपने लेक्चर में लाना चाहते थे। ख़्वाजा साहिब ने इनको पुस्तक के अन्त पर जों का तों रख दिया। हम ने इन में के अन्तिम पृष्ठ का एक उद्धरण इस पुस्तिका के आखिर पर दर्ज कर दिया है। एक तरह से यह हज़रत मिर्ज़ा साहिब का अन्तिम लेख है। (अनुवादक)–

**इसी पुस्तिका से ....**

"हमारी तो यही मान्यता है कि संसार की विभिन्न जातियों में प्रकट होने वाले पैग़म्बर और अवतार, कि जिन्हें करोड़ों इन्सानों ने स्वीकारा, और जिन्हों ने मानवसमाज के एक बहुत बड़े भाग की श्रद्धा पाई, और जो अत्यन्त चिरकाल से सम्मान्य और पूज्य बने हुए हैं – वे सब के सब अल्लाह के सच्चे पैग़म्बर–अवतार थे। यही प्रधान लक्षण उनकी सत्यता के साक्षी हैं। यदि वे ईश्वर की ओर से न होते तो इस तरह करोड़ों दिलों की क़बूलियत और स्वीकृति के अद्‌भुत भाजन न बनते। परमेश्वर कभी किसी और को वह प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं देता जिसे उस ने अपने परम भक्तों केलिए विशिष्ट कर रखा है। यदि कोई झूठा दावेदार इनके आध्यात्मिक आसन पर आसीन होना चाहे तो उसे शीघ्र ही विनष्ट कर दिया जाता है।"

**भारत के प्रमुख वैज्ञानिक और नोबेल पुरस्कार-विजेता**

**सर सी.वी.रमण[१] ने इस पुस्तिका को पढ़कर लिखा था :**

"यों तो इस्लाम को मानने वाले करोड़ों जन पहले ही भारत के वासी हैं, हज़ारों लाखों भारती भी अपने मुसलमान भाइयों के संग इस्लाम के पैग़म्बरश्री हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के प्रति अपनी श्रद्धा और आपकी शिक्षा की सादगी और बुद्धिसंगतता के प्रति अपनी प्रशंसा अभिव्यक्त करते हैं। भूतकाल में भी इस्लाम मानवसमाज के सार्वभौम–बंधुत्व की स्थापना के लिए सतत यतनशील रहा है। **अहमदिय्या समुदाय**, कि जिसने हज़रत पैग़म्बरश्री (सल्ल) की असल शिक्षाओं के प्रचार–प्रसार का बीड़ा उठाया है, उनके यहाँ भी धार्मिक सहिष्णुता पर विशेष बल मिलता है। मुझे उन में इस्लाम के प्रचार व प्रसार तथा भारत के सुखद भविष्य के निमित एक अगाध उत्साह और बल नज़र आता है।"

१. दहांत १९७०, १९३० ई. में फ़िज़िक्स में नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया।